कैसे करें सामायिक ?



- आ.भ. हेमचंद्रसागरसूरि

'जिसमें सारे जिनशासन का सार छुपा हुआ है ऐसी'
सामायिक की विधि, मुद्रा, रहस्य और महत्त्व आदि विषयों पर
मौलिक / मार्मिक चिन्तन प्रस्तुत करती एक अहम् पुस्तिका

कैसे करें सामायिक ?

मूल लेखक
प.पू.आ. श्री हेमचंद्रसागरसूरीश्वरजी म.सा.

संपादन
मुनिश्री आनंदचंद्रसागरजी म.

अनुवाद
साध्वी श्री पूर्णयशाश्रीजी म. की प्रशिष्या
साध्वी श्री पद्मवर्षाश्रीजी

प्रकाशक
आगमोद्धारक प्रतिष्ठान
वलभीपुर

◆ लेखक ◆

आगमविशारद पंन्यासप्रवर पूज्य
गुरुदेवश्री अभयसागरजी म.सा.
के कृपापात्र तथा पू.आचार्य
श्री अशोकसागरसूरिजी के शिष्य
पू.आचार्य श्री हेमचंद्रसागरसूरिजी म.सा.

◆ द्वितीय संस्करण ◆

संवत् २०७४, सन् २०१८

आगमोद्धारक प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित
C/o. जशवंतभाई एस. शाह
मीठाखडी, खीजड़ावाडो वास,
एलिसब्रीज, अहमदाबाद.

मुद्रक
राजुल आर्टस्
घाटकोपर, मुंबइ-७७.
फोन : ०२२-२५०१००५६





प्राप्तिस्थान

परेश जे. शाह,
जय ओम अम्बिका सोसायटी,
देवचंदनगर, मलाड (पू.) मुंबई. फोन २८७७८५१६

राकेशभाई आर. शाह,
ए-१०३, सुक्ति फ्लेटस, सोनल चार रस्ता,
गुरुकुल रोड, अमदावाद, गुजरात. फोन : २७४८९०८१

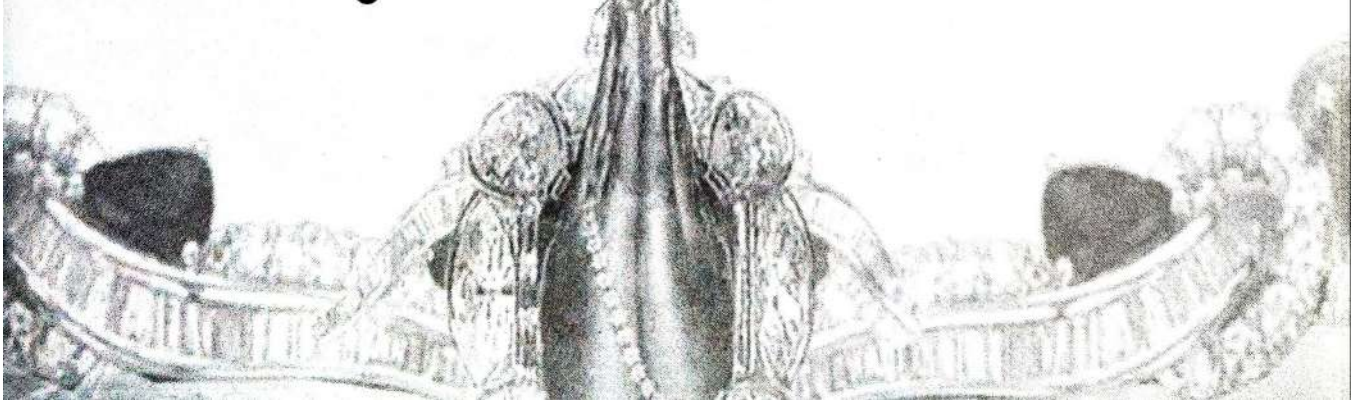
सुमेरु-नवकार तीर्थ
पो. मियागाम, तहसील करजण, जि. बड़ौदा (गुजरात)

जैन आर्यतीर्थ अयोध्यापुरम्
पो. नवागाम, ता. वलभीपुर, जि. भावनगर

प्रवीण गुरुजी,
५२७, कालानी नगर, एरोड्रम रोड, इन्दौर. फोन ९८२७०९७५६३

गणतंत्र मेहता (संपादक युवा प्रबोधन)
C/o. नाकोड़ा टेन्ट हाऊस, चांदनी चौक,
चेम्बर ऑफ कॉमर्स, रतलाम, म.प्र.

श्री सुभाष जैन, ४६, सखीपुरा, उज्जैन.



प्रकाशक : श्री आगमोद्धारक प्रतिष्ठान
श्री आगमोद्धारक प्रतिष्ठान के अनमोल प्रकाशन

विरागना दर्पणमां	गुजराती
गावुं तारा गीत	"
पूजा करीए साची साची (पांचमी आवृत्ति)	"
पूज्य गुरुदेवश्री	"
नवपद ध्यान सदा सुखदाई	"
समजवा जेवुं सामायिक	"
१८००० शीलांग रथ	"
भाग्यदशा अब जागी	"
प्राण जाय अरु वचन न जाय	"
गरवो गिरिराज	"
तलेटीमां बेसी वांचो	"
जय भेटवा पारसनाथ	"
विचार पंछी	"
आनंदना अजवाला	"
सागरनी सरगम	"
सागरजीनुं शिल्प	"
सागरनुं सौंदर्य	"
आनंदना पुष्पो	"
आनंदनी केडीए	"
पूजन कैसे करुं ?	हिन्दी
ऊजला सूरज धुंधला प्रकाश	"
पूज्य गुरुदेवश्री	हिन्दी
भावना ना सथवारे	गुजराती
शिखरजीनी पगथारे	
जपयोग	गुजराती
तीर्थ मांडवगढ़	हिन्दी
भक्ति दीपिका	गुजराती
पूजा	"
तत्वार्थ सूत्रना कर्ता कोण ?	गुजराती
भेद मिटे भय जाय	"
अष्टाह्निका व्याख्यान	संस्कृत

उपधाननुं सुंदर स्वरुप (दूसरी आवृत्ति)	
सागर किनारेथी शासनना द्वारे	"
बृहद् योग विधि...	"
आ छे महामंत्र नवकार	"
नवकार शरणं मम	"
आरजू	"
नवकार ! तारे भरोसे...	"
जिनागम शरणं मम	"
मारो नवकार साचो नवकार	"
नवकार परिवारनो आधार	"
कैसे करें सामायिक	हिन्दी
जपलो प्यारे श्री नवकार	गुजराती
चाहुं चरण जिनचन्दना	
दे दोट नवकारमां	
नवकारना रंग साधनाना अंग	
शांतिनो सेतु नवकार छे तुं!	
मंगल नवकार (मासिकपत्र)	गुजराती
युवा प्रबोधन (मासिकपत्र)	हिन्दी
नाम रटन सुखदाई	
नाना बालकोना मोटा अभयसागरजी	
शब्द - कलश	गुजराती
मातृपूजा -	हिन्दी
मातृपूजा -	गुजराती
शासन ज्योतिर्धर	गुजराती
मेरी प्रार्थना	गुजराती
परिवार पूजा -	गुजराती
आगम -उजास	गुजराती
तीर्थ-यात्रा	गुजराती
दादा -आदिनाथ	गुजराती
तत्त्व - दोहन	गुजराती

प्रकाशक की कलम से...

''कैसे करें सामायिक''
हमारा यह प्रकाशन
हमारे द्वारा पूर्व में प्रकाशित सर्व श्रेष्ठ पुस्तक
''पूजन कैसे करुं ?''

पुस्तक जैसी ही लोकप्रियता प्राप्त करेगा । इसका हमें पूर्ण विश्वास है परिश्रम के परिमल, लगन के लगाव से महकती यह पुस्तक स्वयं की गरिमा से इस प्रकार गरिमामय बनी है । इसका आपको स्वयं पढ़ने से ही पता चलेगा ।

इसका प्रुफ जिन पूज्यों ने, विद्वानों और विचारकों ने पढ़ा है, वे सभी ''वाह-वाह'' बोल उठे हैं ।

इस अनमोल पुस्तक की सौगात देनेवाले पूज्यश्री के उपकार के साथ पूज्य आ. दे. श्री हेमचंद्रसागरसूरिजी ने यह पुस्तक गुजराती भाषा में लिखी जिसका हिन्दी में अनुवाद एवं संपादन मुनि श्री आनंदचंद्रसागरजी एवं साध्वीश्री पद्मवर्षाश्रीजी म. (सांसारिक पक्ष में भाई-बहन)ने कठिन परिश्रमके साथ किया हम इनके अंतस्तल से आभारी हैं । हमारे सौभाग्य के साथी श्रीयुत कुमारपालभाई वी. शाह आदि को धन्यवाद के साथ आभार व्यक्त करते हुए इस पुस्तक के प्रकाशन के मिले इस अवसर के लिए बहुत बहुत आनंद व्यक्त करते हैं ।

जशवंतभाई शाह

समर्पणम्

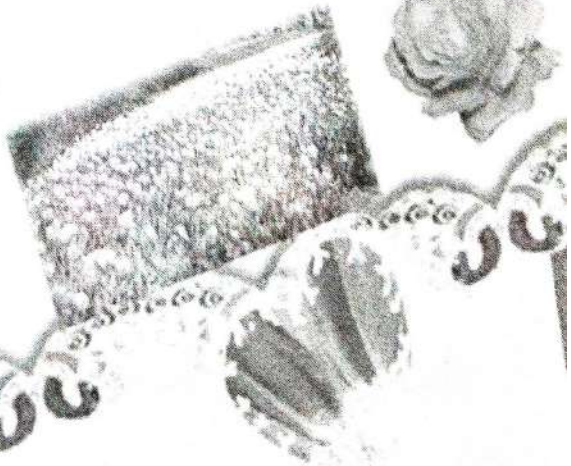
शास्त्रों के
असीमसागर के तल में
गोताखोर बन कर
जिन्होंने
सामायिक का
सर्वांग-सुंदर रहस्य
हासिल किया
और संघ के समक्ष
प्रस्तुत किया, ऐसे...
परमकृपावंत पन्यासप्रवर
पूज्य गुरुदेवश्री
(पं. अभयसागरजी म.सा.) के
करकमलों में
बहुत-बहुत विनयभाव से...

-हेमचंद्रसागर

पुस्तक की पगदंडी...

- मोक्ष मंजिल का राजमार्ग सामायिक १
  (पू. गच्छाधिपति आ. श्री सूर्योदय सा. सूरि)
- सामायिक एक खोज है... ..... ४
  (प्रस्तावना श्री कुमारपाल वी. शाह)

१. जैन शब्दकी धरोहर: सामायिक (लेखकीय) ८
२. माध्यस्थ्य यानि सामायिक ११
३. सामायिक में त्रिविध शुद्धि १८
४. उपकरण शुद्धि २८
   (i) वस्त्रशुद्धि २९
   (ii) कटासना ३०
   (iii) मुहपत्ति ३२
   (iv) चरवला ३५
   (v) उत्तरासंग (खेस) ४०
   (vi) कंदोरा ४३
४. विधि शुद्धि ४६
५. समझ: सामायिक पारने के आदेश ७३
६. सामायिक में त्याज्य बत्तीस दोष ७६
७. सामायिक विधि में उपयोगी सूत्र ७९
८. सामायिक पारने की विधि ८३
९. मुहपत्ति के बोल...खोले कर्म की पोल... ..... ८५
१०. सामायिक के सूत्रों का संक्षिप्त अर्थ ९८
११. चलें उलझन मिटाऐं १०६





मोक्ष मंजिल का राजमार्ग: सामायिक

कर्मशास्त्रनिपुणमति पू. गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री सूर्योदयसागरसूरिजी म.सा.

सामायिक शब्द में सम + आय + इक ये तीन विभाग हैं इसमें तीसरा ''इक'' स्वार्थ प्रत्यय है । (संस्कृत व्याकरण के अनुसार) सम और आय यह दो शब्द है ।

सम का लाभ हो या समानरुप का लाभ हो यह इसका सामान्य अर्थ है । सामान्यतया लोगों को जिससे समता का लाभ हो, वह सामायिक यह सामान्य प्रचलित अर्थ है । क्रोधी व्यक्ति क्रोधावेश का त्याग कर के समता को धारण करे, यह सामायिक का प्रसिद्ध अर्थ है ।

परंतु विचार करें तो इस शब्द के अनेक अर्थ निकलते हैं–

शास्त्रकार भगवंतों ने सामायिक चार प्रकार की बताई है-

१) सम्यक्त्व सामायिक

२) श्रुत सामायिक

३) देशविरति सामायिक

४) सर्वविरति सामायिक

सामायिक नाम के शब्द और अर्थ के पर्यालोचन से इस शब्द की 'वास्तविकता' प्राप्त हो सकती है इसके लिये थोड़ा प्रयास करें ।

''सम'' शब्द का अर्थ तुल्यता, सादृश्य, समानता ।

सभी सिद्धभगवंतो की समानता सामायिकभाव से होती है । और यही है वस्तुतः सम्यक्त्व है, इसलिये इसे सम्यक्त्व सामायिक कहाँ है ।

अर्थात् अनादिकाल से परिभ्रमण कर रही आत्मा को सिद्ध अवस्था प्राप्त करने का कोई एक मार्ग हो तो वह सामायिक है ! इस सुदृढ़ मान्यता के आधार पर ही सामायिक करने से सिद्ध पद प्राप्त कर सकते हैं । इसी हेतु से दशपूर्वधर पूज्य उमास्वातिजी भगवंत ने संबंधकारिका में बताया है कि,

''सामायिक-पद-मात्र-सिद्धा अनंता''

दूसरा है: श्रुत सामायिक

इसमें ''सम'' का अर्थ है ''सर्व'' । जिसमें सर्व का लाभ प्राप्त होता है । और ऐसातत्त्व है श्रुत, इस लिये इसका नाम ''श्रुतसामायिक'' वास्तविक लगता है ।

प्रत्येक धर्म प्रवृत्ति का मूल ज्ञान है यह श्रुतज्ञान स्व पर उपकारक है । इससे सामायिक के साथ ''श्रुत'' शब्द जुड़ता है । सामायिक चारित्रप्रधान होने बावजूद इसकी सार्थकता श्रुत से होती है । यह बात इस दूसरे भेद से ज्ञात होती है ।

चारित्र से ही सर्व कार्य सिद्ध होते हैं, ऐसी दृढ़ श्रद्धा पूर्वक ज्ञान होने पर भी प्रत्येक आत्मा संपूर्ण चारित्र न ले सके, तो ऐसी **आत्माओं के लिए देशविरति धर्म बताया गया है । इसे ही देशविरति सामायिक कहते है । सभी कर्मों के क्षय के लिये सर्व सावद्य त्याग स्वरुप जो चारित्र है उसे सर्वविरति सामायिक** के नाम से संबोधित करते हैं । सामान्य रुप से सामायिक के चार नामों की मीमांसा करने के बाद, सामायिक की महत्ता के लिये ''सम'' शब्द की विचारणा लाभकारी रहेगी । थोड़ा यह भी विचार कर लें ।

सम का प्रतियोगी शब्द विषम है ।

आत्मा की विषमदशा अनादि काल से है । आत्मा के सम स्वरुप के

अवरोधक तत्व राग और द्वेष हैं । आत्मा की निजी अवस्था सम है अर्थात् राग-द्वेष से मुक्त अवस्था ही सम अवस्था है । इसने अनादिकाल से राग-द्वेष को रोक रखा है ।

इससे आत्मधर्म की श्रद्धा के अवरोध स्वरुप मोहनीय कर्म की ७० कोड़ा कोड़ी सागरोपम स्थिति बंधती है । ज्ञानावरणीय कर्म की तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की स्थिति बंधाती है । चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की चारित्र मोहनीय कर्म की स्थिति बंधाती है । इस प्रकार ज्ञानी भगवंतों ने सामायिक के चार भेद बता कर आत्मा की विषम स्थिति से समस्थिति बनाने की प्रक्रिया दर्शायी है ।

यह सामायिक की प्रक्रिया हम अनादि काल से करते आ रहे हैं, यदि हम ४८ मिनिट की शुद्ध सामायिक करेंगे तो आत्मा अवश्य मोक्षपद प्राप्त कर सकती है । इस भाव को बताने के लिये पूर्व महर्षियों ने सामायिक का जघन्य समय (४८ मिनिट) अंर्तमुहूर्त बताया है ।

आत्मा का परम सौभाग्य जागृत होता है, तब ही यह करने का योग प्राप्त होता है । इस योग को साधने के लिये आवश्यक वस्तु हैं १) कटासना २) चरवला ३) मुहपत्ति ४) धोती ५) कंदोरा ६) खेस ! यह छः वस्तुएँ उत्तमभाव पैदा करती है व स्वयं उत्तम होती है । इसलिये इनकी आशातना नहीं करते हुए इन्हें किया गया नमस्कार भी सामायिक के मार्ग पर ले जाता है । सामायिक का सविस्तार मौलिक-मार्मिक और तात्विक ज्ञान आपको इस पुस्तक से मिलेगा ।

मेरे आ-बालमित्र आगमविशारद पंन्यास श्री अभयसागरजी के कृपापात्र लाड़ले शिष्य पन्यास प्रवर श्री हेमचंद्रसागरजी (वर्तमान में आचार्य)ने शासनप्रभावना की अपनी अनेक प्रवृत्तियों में से समय निकालकर यह पुस्तक लिखी है । इसे पढ़ कर सार्थक बनावें, यही शुभेच्छा ।

ता. २४-३-९३
जैन उपाश्रय
पो. शिवगढ़, जि. रतलाम (म.प्र.)

पूज्य आगमोद्धारक शिष्य
सूर्योदयसागर



सामायिक एक खोज है

कुमारपाल वी. शाह (धोलका)
प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता

मगध सम्राट श्रेणिक ने कहा, ''प्रभु मैं मरकर नरक में जाऊंगा, यह सुन कर मैं कांप उठा हूँ'' मेरी दुर्गति ना हो, मुझे इसका कृपा कर कोई उपाय बताइए।

भगवान महावीर ने कहा, ''श्रेणिक ! तुम्हारी दुर्गति को टालने की ताकत राजगृही में रहने वाले पुणिया श्रावक की सामायिक में है । उनकी एक सामायिक का फल तुम्हें मिल जाये, तो तुम निहाल हो जाओगे ।''

श्रेणिक ने पुणिया के दरवाजे पर जाकर कहा, ''तुम्हारी एक सामायिक में मेरी नरक को टालने की ताकत है, तुम मांगो उतनी और वैसी संपत्ति मैं तुम्हें देने को तैयार हूँ, बस तुम मुझे एक सामायिक का फल दे दो ।''

धर्म और धर्मकी क्रिया व्यक्तिको इतनी तो समृद्ध बना देती है कि यदि वह समृद्धि याचक के पास हो तो उसके सामने सम्राट जैसा सम्राट कोड़ी का बन जाता है ।

पुणियाने कहा ''मेरे चित्त की प्रसन्नता को आप कैसे खरीद सकते हैं ? चाहे तो मुझे खरीद लीजिए लेकिन सामायिक खरीदने का कोई उपाय नहीं है । **सामायिक पाई जा सकती है, उसे खरीदी नहीं जा सकती ।''**

दु:ख निकालने से नहीं जाता, दोष निकालने से जाता है । नरक के दु:ख को तोड़ने श्रेणिक पुणिया के पास गए, **समृद्धि से सत्व नहीं खरीदा जा सकता ।** सामायिक तो समग्र मगध की समृद्धि से कहीं ज्यादा बढ़कर है । इस चीज ने सम्राट जैसे सम्राट् को भी पुणिया के पास याचक बना दिया । इस सामायिक की कीमत कितनी ? इसकी ताकत कितनी ? भगवान महावीर और

सामायिक के साथ संबंध जोड़ने के कारण पुणिया ने मगध सम्राट् तक की परवाह नहीं की ।

संतोष लाचारी नहीं पर खुमारी है । पुणिया की कैसी गजब की खुमारी !

पुणिया संपत्ति के अभाव में सुखी थे । मम्मण संपत्ति के ढ़ेर पर भी दुःखी था । सुख का संबंध संपत्ति या सामग्रियों के साथ नहीं, संतोष के साथ हैं । **हम अभाव के कारण नहीं, असंतोष के कारण दुःखी-दुःखी होते है ।** सुख की सामग्री जरुर इकट्ठी की जा सकती है, परंतु सुख नहीं । जिससे समभाव और संतोष मिलता है, उसी का नाम संपत्ति हैं । यह पुणिया का मुद्रालेख था...

करोड़ रुपये की कीमत से भी एक सामायिक नहीं मिल सकती पर एक सामायिक के प्रताप से करोड़ों वर्षों का देवताई सुख निश्चित मिलता है । तो भी हमें क्या पसंद है ? शालिभद्र या पुणिया ? संपत्ति के लिये शालिभद्र और संयम ना लेना पड़े इसलिये पुणिया श्रावक जैसे बनना पसंद करते हैं । अपार फल को देनेवाली सामायिक की महत्ता जो नहीं समझे, तो ये उनकी मूढ़ता ही है ।

सामायिक क्या है ? संस्कृत शब्द है । प्राकृत में सामायिक है । समभाव को प्रदान कराने वाली, लाभ कराने वाली सामायिक है । अभाव से स्वभाव की ओर खींच ले जानेवाला यह योग है । सामायिक अर्थात् मौन आत्मालाप, वार्तालाप है । हमारी **आत्मसंपत्ति गुमी नहीं, भूलाई है ।** सामायिक खोज है । शोध है । सामायिक कहती है-खो जाओ, मिल जाएगा । जो चीज हकीकत में अपनी नहीं होती है, उस चीज का खो जाना संभव है । 'दूसरों को नहीं तूं स्वयं को मिल, अंदर खोजने पर अंतर के द्वार खुल जायेंगे ।' सामायिक खजाना खोलने की मास्टर की है ।

''जो भी आज तक मोक्ष में गये हैं, आज भी जो मोक्ष में जा रहे है, और भविष्य में जो मोक्ष में जायेंगे, यह सब एक मात्र सामायिक का प्रभाव है ।''

''नवमो नव निधि जाणीए, सामायिक व्रत सार ।''

तीर्थंकर भगवान दीक्षा लेते समय ''करेमि सामाइयं'' का उच्चार करते हैं ।

सामायिक श्रावक के छः आवश्यकों में से एक है ।

श्रावक के बारह व्रत में नवाँ सामायिक व्रत है ।

देशविरति में से सर्वविरति जीवन में जाने का प्रवेश द्वार सामायिक है ।

साधु जीवन का आंशिक आनंद सामायिक धर्म पालने से मिलता है ।

जब तक हम सामायिक में होते हैं, साधु जैसे होते हैं । साधु भगवंतों को आजीवन अखंड़ सामायिक होती है, श्रावक जीवन में ४८ मिनिट की सामायिक होती है । सामायिक में सत्व ज्यादा और महत्त्व अपरंपार है । ''सामायियं संखेवो चौदस पूव्वस्स पिंड़ोति'' सामायिक नाम का यह व्रत चौदह पूर्व का सारभूत पिंड़ है । सामायिक जीवन की ऐसी नोलवेल है जो संसार का जहर को उतारने का काम करती है ।

यहाँ सामायिक विषय संबांधित A to Z जानकारी परम पूज्य आचार्य हेमचंद्रसागरसूरिजी ने लिखी है । सामायिक की यह पुस्तक सुव्यवस्थित सघन और वाचन में सरल तथा जानकारी देने वाली है । इसके ताजगी भरे गद्य में स्वयं की पहचान है । ज्ञान की रमणीय प्याऊ के समान पूज्यश्री में शास्त्र ज्ञान की गहराई है शास्त्र सम्मत बातों की गूंज एवं गुंजाईश है । अपनी भाषा के प्रतिभाव रुप में अपने हृदय की ऊष्मा और सुषमा की प्रतीति करा रही है ।

उनके लेखन में तत्वज्ञानकी गंभीरता, शांति, स्फूर्ति और तर्क की शुद्धि झलकती है । वैभवी व्याख्यानकार तो वे हैं ही साथ ही सार तत्वों का अवगाहन कर वे जैनधर्म की महिमा गाते रहते हैं । और जब जब उनका कंठ खुलता है, प्रत्येक श्रोता की आँख के सामने अनायास कमल का सरोवर उछलता हो ऐसा प्रतीत होता है । इनको परमात्मा भक्ति का मूल वंशपरंपरा से मिला है । आयंबिल तप से अपने अंतर को हरा-भरा बनाया है । उनकी कलम में मेधा और मार्मिकता के दर्शन सामान्य बात है । मैंने जब भी उनका आत्मसंग किया है, हल्के और स्नेह भरे हृदय से जुड़ा हूँ ।

सामायिक के विषय पर पुस्तक जरुरी थी । उपयोगी और आवश्यक विषय पर लिखी गई यह पुस्तक आदरणीय बनेगी ही । टू द पॉईट संपूर्ण जानकारी मिले ऐसा उनका निर्दोष लेखन है । समझ सद्भावना का जन्म स्थान है । समझ के साथ सद्भाव जुड़ा हुआ रहता है । रसमयता के बिना तन्मयता

नहीं जागती, **रसमयता के पीछे तन्मयता चली ही आती है । परिचय, प्रेम, प्रयास और प्राप्ति ये प्रगति के क्रमशः सोपान है ।** सामायिक योग का परिचय होने से इसके प्रति प्रेम अपने आप हो जाता है यह प्रेम, प्रयास और प्राप्ति के रुप में परिणमन होता है ।

यह पुस्तक सामायिक नहीं करने वालो में प्रतिदिन एक सामायिक करने का उत्साह जगायेगी । धर्म क्रिया के लिये श्रद्धा, विधि और शुद्धि इन तीन बातों की मुख्यता है । श्रद्धा को बढ़ाने, शुद्धि के लिये बल देने और विधि के लिए जागृत रखने में सक्षम इस पुस्तक में सुंदर आलेखन किया गया है, जो अर्थानुसार और अर्थपोषक भी है ।

मूल को सींचने पर ही वृक्ष व्यापक बनता जाता है । वृक्ष को ऊपर उठने के लिए मूल को ज्यादा से ज्यादा नीचे जाना पड़ता है । आसानी से ऊपर उठने का कोई उपाय नहीं है । सामायिक की साधना बहुत गहरी है, गहराई बढ़ेगी, तो ऊँचाई का स्पर्श होते चला जायेगा । सामायिक साधना द्वारा अंतर में उतर कर सिद्धि का स्पर्श कराने वाला अनोखा योग बनेगा ।

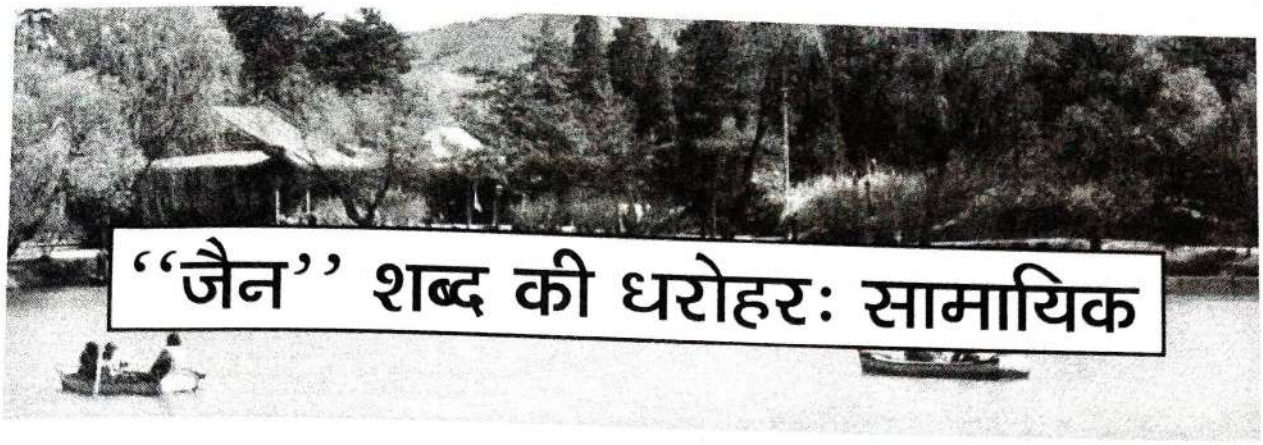
अकारण, अस्वस्थ और अस्पष्ट मनमस्तिष्क से चिंता के बादल को दूर करने के लिए, उपाधि के जंगल में से समभाव को सुरक्षित रखने के लिए, समग्र अस्तित्व में से कोई ठोस आकार देने के लिए, जब हम समता और समतुला दोनों खो बैठते है तब पुनः स्वस्थता और तटस्थता देने वाली सामायिक का महत्व समझकर इसके प्रति ममत्व जगाएँ यही शुभेच्छा ।

कुमारपाल वी. शाह

१५-४-९३

सामायिक पोसहेसु संढ़ियस्स, जीवस्स जइ ओ कालो
सो सफलो बोधव्वो, सेसो संसार-फल हेऊ ।

अर्थ : इस जीव का जितना ज्यादा समय सामायिक और पौषध में गुजरता है, उतना ही ज्यादा सफल गिनाता है...बाकी का समय संसार के फल को बढ़ाने में लगता है ।



''जैन'' शब्द की धरोहर: सामायिक

''जैन'' शब्द स्वयं सामायिक का परिचायक शब्द है । सामायिक शब्द पर से ही ''जैन'' शब्द का निर्माण हुआ है । जैन शब्द का मूल है, ''जिन''

जिन का अर्थ है- जिसने राग-द्वेष को जीत लिया है ।

राग करने की स्थिति में रुके नहीं ।

द्वेष करने की स्थिति में झुके नहीं ।

दोनों स्थिति में समता की दशा रखने की सिद्धि जिन्होंने हासिल कर ली है ।

किसी भी प्रकार के संजोग मिलने पर भी जो राग या द्वेष नहीं करते, उन्हें जिन कहते हैं ।

ऐसे जिन को भगवान के रुप में जो स्वीकारता है, वह जैन कहलाता है । इसलिये ''जैन'' शब्द ''समता'' की बुनियाद पर खड़ा हुआ है । **इस समता का आंशिक आस्वादन जिस प्रक्रिया से मिलता है, उस का नाम सामायिक है ।**

सामायिक शब्द जैन धर्म में बहुत पुराना है । इतना ही नहीं, इस ''सामायिक'' शब्द पर पूर्वाचार्यों ने कई ग्रंथ रचे हैं । रास रचे गये हैं । शास्त्र सजाये हैं, और कई पुस्तकें भी लिखी गई है । प्रत्येक में कुछ न कुछ विशेषता निहित है ही ! ऐसा ही इस पुस्तक में भी देखने को मिलेगा, इसके बजाय यह पुस्तक कुछ अलग ही परोसेगी यह निश्चितता से कहा जा सकता है । कारण कि ऐसे ही मजबूत संशोधन के आधार पर यह पुस्तक लिखी गयी है ।

परम-कृपालु तारकवर्य गुरुदेव (पू.पं. अभयसागरजी म.सा.) के ऊंझा में हुए अंतिम चातुर्मास के दौरान वे प्रत्येक रविवार को सामायिक के विषय पर वाचना फरमाते थे, यह वाचना प्रायोगिक (प्रेक्टिकल) रुप में दी गयी । वाचना में आनेवाले प्रत्येक श्रावक-श्राविका को सामायिक लेना जरुरी होता तो भी भीड़ रहती ।

इन वाचनाओं में पूज्यश्री ने सामायिक विषय पर खूब सुंदर विवेचन फरमाया । यह विवेचन सुसाध्वी श्री पुण्ययशाश्रीजी म.सा. (पू. साध्वी श्री सुलसाश्रीजी म.सा. की शिष्या) तथा सुश्रावक श्री रसिकभाई छनालाल शाह ने अपनी नोट में संक्षिप्त में उतारा ! वाचना की यह श्रेणी अत्यंत असरकारक रही । मुझे यह नोट मिली, तब मन हुआ, कि सामायिक विषय पर कुछ लिखूँ । पुस्तक में लिखा हुआ लगभग तो पूज्य गुरुदेवश्री की वाचना के किनारे छू कर ही लिखा गया है । परंतु इसमें दूसरे भी बहुत सारे उद्धरण हैं जिन्हें अन्य जगह से प्राप्त किया गया है । उपलब्ध कर, मेहनत मिलाकर पुस्तक को सुगंधित बनाया है ।

आवश्यक निर्युक्ति
वन्दारुवृत्ति
अभिधान राजेन्द्र कोष
सेनप्रश्न
सागर-समाधान
सामायिक (मो.दी. की पुस्तक)
यतिदिनचर्या
शास्त्रवार्ता समुच्चय
पंचवस्तु
आदि ग्रंथ

इनके सिवाय अनेक पूज्यों पंड़ितों, चिंतकों, विचारकों के साथ संपर्क करके यह पुस्तक तैयार की है । स्वयं मुझे भी लगता है. कि बहुत सुंदर

जानकारी एकत्रित हुई यह पुस्तक भी अलग ही बनी हैं । आशा है कि ''क्युं कर भक्ति करुं'' व 'पूजा करीए साची साची' पुस्तक की तरह ही यह पुस्तक भी उतना ही आदर पायेगी ।

सबसे ज्यादा खुशी की बात तो यह है कि, पुस्तक का अधिकांश लेखन पूज्य गुरुदेवश्री के बचपन के मित्र, परमोपकारी पूज्य गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री सूर्योदयसागरसूरीश्वरजी म.सा. ने अपनी तत्वदृष्टि तले गुजरा है । उन्होंने मुझे मार्गदर्शन भी दिया है । इससे मानता हूँ कि लेखन का वजन बढ़ गया हैं । पुस्तक के लिये स्वयं ने भी आशिर्वचन स्वरुप थोड़ा लिख भेजा है इससे सविशेष संतुष्टि है ।

विशिष्ट प्रतिभाशाली बहुसुज्ञ श्री कुमारपालभाई वी. शाह ने पुस्तक को साद्यंत निहार कर मुझे प्रोत्साहित किया और प्रस्तावना लिखकर पुस्तक की गरिमा में चार चांद लगा दिये हैं, यह भी खुशी की बात हैं ।

पुस्तक के लेखन कार्य में सहयोगी बने, सदा के साथी मेरे पूज्य बड़े बंधु श्री जिनचंद्रसागरजी म.सा. तथा जिनके संशोधनात्मक सहयोग से पुस्तक ज्यादा समृद्ध बनी वे है सुविनयी गणि श्री नयचंद्रसागरजी, श्री विरागचंद्रसागरजी, मुनि श्री मेघचंद्रसागरजी आदि तथा श्री धनंजयभाई जैन के सुस्नेह-सुस्मरण के साथ इसका स्वाध्याय का सुयोग भी मिलता रहा। यह मेरा मंजा हुआ सौभाग्य है।

मेरी गुजराती पुस्तकको हिन्दी में रुपान्तरित करने का प्रशस्य प्रयास सुविनेय मुनिश्री आनन्दचन्द्रसागरजी एवं उनकी ही सांसारिक संबंध से ज्येष्ठ भगिनी साध्वी श्री पद्मवर्षाश्रीजीने किया है । दोनों को धन्यवादार्ह मानता हूँ ।

गुरुवरचरणलीन
हेमचन्द्रसागर



(१) माध्यस्थ यानि सामायिक

हेमचंद्रसागर

संतुलन का मजा ही कुछ और है । कहीं भी ड़गमगाना या लड़खड़ाना नहीं । बस तटस्थ-मध्यस्थ अड़िग-अविचल बने रहना । यदि जरा भी असंतुलित हुए तो समझो उलझे, फंसे ।

याद रहे, साईकिल वही चला सकता है जो अपना संतुलन (Balance) बराबर बनाए रखे । ठीक उसी प्रकार जिंदगी का असली स्वाद (Real Test) भी वही उपलब्ध करता है जो हर परिस्थिति में संतुलित हो ।

संतुलित व्यक्ति हर स्थिति का 'समभाव' से स्वागत करता है । यही सबसे बड़ी दौलत है । और इसीलिए तो, जो संतुलित है वह हर हाल में सुरक्षित है । उसे कहीं भी, कभी-भी अफसोस, नाराजगी, व्याकुलता और बैचेनी नहीं होती ।

यही बात 'कवि' ने अपने शब्दों मे लिखी है, **'समता रसना जे भोगी'** साधु-संतों के जीवन से सम्बन्धित इस सज्झाय में साधु का यह प्रथम विशेषण है जिसका भावार्थ है, श्रमण जीवन में कहीं विषमता नहीं होती वहां तो समता का ही एकछत्र साम्राज्य होता है ।

जहां तमाम परिस्थितियों का समान भाव से स्वीकार होता है, वहां समता का झरना फूटे बिना नहीं रहता । प्रतिपल वहां, समता की वीणा पर समाधि की सुमधुर स्वर लहरियाँ सुनाई देती हैं । विषमता की व्याकुलता का शोर वहां नहीं होता । वहां तो होते हैं शीतल और मन्द पवन के झोंके । कड़कड़ाती ठंड़ की ठिठुरन हो या वैशाख जेठ की आग उगलता सूरज, चाहे आंधी आए या तबाही मचाता तूफान आए...अनुकूल विषयों के 'फूल' बिछे या प्रतिकूल विषयों

के कांटो की चुभन लगे, समताशील व्यक्ति सर्वत्र संतुलित रहता है । फलतः उसके चेहरे पर हमेशा मुस्कान की महक फैलती रहती है । उसकी यह पहचान होती है: केवल अपना ही ध्यान, औरों से निरपेक्ष ।

साईकिल-चालक भी तभी अपना बेलेंस संभाल पाता है, जबकि वह आस-पास से निरपेक्ष होता है । यदि वह इधर-उधर देखता रहे, तो किसी से टकरा जाए, और मार खाने की नौबत आ जाए । कोई अत्यन्त कुशल हो, और इधर-उधर देख भी रहा हो तो वह भी अपना सन्तुलन बनाए रखने से नहीं चूकेगा।

'साधु', आत्मा सिवाय सभी पदार्थों से निरपेक्ष होता है इससे उसका संतुलन बराबर बना रहता है । तभी तो वे समत्व के संगीत के सुरीले साधक होते हैं ।

समता, साधुता का मुख्य गुण है और जिनशासन का प्राण है । जिनशासन की समस्त क्रियाएँ समता की सिद्धि के लिए है ।

'मनः प्रसन्नतामेति' पूज्यमाने जिनेश्वरे' ।

प्रभु की पूजा के पीछे भी समता प्राप्ति का ही मकसद छुपा है ।

जिनशासन वृक्ष है, 'समता' उसका फल है ।

जैसे वृक्ष की प्राप्ति फल के लिए है, वैसे जिनशासन की प्राप्ति समता के लिए है ।

'समता' की सर्वोच्च साधना यानि साधु-जीवन ।

परंतु, साधु-जीवन को प्राप्त कर पाना, हर किसी के लिए संभव नहीं है।

तो, अब तक जो साधुता, को हासिल नहीं कर पाए उनके लिए 'समता' का स्वाद लेने के लिए सर्वोत्तम विकल्प है–सामायिक । 'सामायिक' एक ऐसा अनुष्ठान है जो समता से सीधा सम्बन्ध रखता है ।

जिनशासन ने श्रावक के लिए अवश्य करने योग्य कर्त्तव्य की संख्या छह बताई है । इन्हे षड़ावश्यक (छः आवश्यक) नाम से पहचाना जाता है । इनमें भी सबसे पहला स्थान सामायिक को दिया गया है । उसके बाद (२) चतुर्विंशति

स्तव (३) वंदन (४) प्रतिक्रमण (५) कार्योत्सर्ग और (६) पच्चक्खाण को क्रमशः स्थान दिया गया है । पूज्यपाद सूरिपुरन्दर श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज ने आवश्यक सूत्र की 'टीका' में स्पष्ट बताया है, कि छः आवश्यकों में प्रमुख तो सामायिक ही है शेष पांच तो इसके उत्तरभेद है ।

इसका तो नाम ही कितना सार्थक है: 'सामायिक' । आज यह नाम बहुत विकृत कर दिया गया है । लोग अपने अपने हिसाब से इसका उच्चारण करने लगे हैं कहीं, समायक, कहीं सामेक, कहीं समाक तो कहीं सामक और समाग भी सुनाई देता है । मूल और शुद्ध नाम हैः सामायिक ।

इस नाम में ही 'समता' का संदेश निहित है । सामायिक, छोटी पर ऐसी सुन्दर प्रक्रिया है कि यदि इसे बार-बार विधिपूर्वक की जाए तो समता का स्वाद आए बिना नहीं रहे ।

सम=समता,

आय=लाभ

इक=जिससे ।

तीनों शब्दों के मिलने से एक शब्द बना है सामायिक । श्रावक जीवन में सामायिक का महत्व बताते हुए कहा गया है **'बहुसो सामाइयं कुज्जा' ।**

जब श्रावक सामायिक पारने के लिए तैयार होता है तब उसे स्मरण करवाया जाता है कि, सामायिक 'बार-बार' करना चाहिए ।

पुणिया श्रावक ने इसी सामायिक के बल पर तो महाराजा श्रेणिक को आकर्षित किया था । उनकी सुविशुद्ध सामायिक में श्रेणिक महाराजा की नरक को दूर करने की क्षमता थी ।

और, सबसे अहम् बात तो यह है कि यह कथन स्वयं भगवान महावीर ने अपने श्रीमुख से किया था । कैसी होगी वह सामायिक ?

नरक में जाने की बात सुनकर, श्रेणिक का हृदय विह्वल हो उठा । वे सोचने लगे करुणावंत प्रभु वीर का मैं भक्त और मुझे नरक में जाना पड़ेगा । नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए । नरक में मुझे दुःख मिलेंगे, इस बात से मैं बेचने नहीं हूँ लेकिन यदि मैं नरक में जाऊंगा तो इससे मेरे भगवान की प्रतिष्ठा धूमिल होगी

। लोग क्या कहेंगे कि महावीर स्वामी का भक्त होते हुए भी श्रेणिक नरक में गया ?

चलो, जाता हूँ भगवान के पास और नरक में न जाने का उपाय पूछता हूँ । श्रेणिक पहुंचे प्रभु के पास और अपनी जिज्ञासा व्यक्त की ।

तब, प्रभु ने उत्तर देते हुए कहा कि- श्रेणिक ! यूँ तो तेरी नरक निश्चित है फिर भी तू बचना चाहता है तो सुन/इन चार में से यदि कोई भी काम तू कर ले तो तू नर्क में जाने से बच जाएगा तीन विकल्पों में जब सफलता नहीं मिली तो श्रेणिक पुणिया श्रावक की सामायिक लेने उनकी कुटिया में पधारे ।

'मेरे लिए एक सामायिक करो महाश्रावक ।'

पुणिया श्रावक ने कहा, ''महाराजा ! सामायिक तो मेरा आभूषण है, इसे परमात्मा की आज्ञा पालन सिवाय दूसरे किसी आशय से करके कलंकित नहीं कर सकता । इहलौकिक या पारलौकिक किसी भी आशय की पूर्ति के लिए मैं सामायिक नहीं कर सकता ।''

श्रेणिक महाराजा ने कई युक्तियाँ दी पर पुणिया एक से दो नहीं हुए । अंत में संपत्ति की लालच देने की शरुआत की, समस्त राज्य अर्पित करने की बात रखी, पर पुणिया तैयार नहीं हुए ।

जहाँ एक ओर एक सामायिक के लिए श्रेणिक महाराजा समग्र मगध का साम्राज्य देने के लिए तैयार हैं, वहीं पुणिया श्रावक प्रभु-आज्ञा के लिए विशाल साम्राज्य को भी ठुकराने का सामर्थ्य दिखा रहे हैं । दोनों के हृदय में सामायिक किस कदर बसी होगी...महाराजा चंद्रावतंसक इसी सामायिक की नैया में बैठकर भवसमुद्र तिर गए ।

कई ऐसे पुण्यात्मा हैं जिन्होंने सामायिक के माध्यम से अपना कार्य सिद्ध कर लिया । ऐसी महिमावंत सामायिक आज भी श्रावकों के घर-घर में देखने को मिलती है । कहीं-कहीं तो एक दिन में पाँच-पाँच, छह-छह सामायिक करनेवाले भाग्यशाली भी मिलते हैं । पर बहुत दु:ख के साथ बताऊँ कि जिस शब्द पर से सामायिक शब्द का निर्माण हुआ जिसका स्वाद पाने के लिए सामायिक-अनुष्ठान प्रस्तुत किया गया है, उस 'समता' की प्राप्ति इस सामायिक द्वारा कितनों को

प्राप्त हुई है ?'' ''**यह एक गंभीर प्रश्न है**'' ।

पर क्यों ? समता के लिए ही तो सामायिक है तो फिर सामायिक करने से समता क्यों नहीं मिलती ?

भला जब मंजिल पाने के लिए साईकिल है, तो जैसे साईकिल से मंजिल तक पहुँचा जाता है वैसे ही सामायिक से समता आनी चाहिए न ?

बहुत बढ़िया बात बताई, मंजिल पाने के लिए साईकिल है तो सही, लेकिन साईकिल चलाना आए तब न / याद आता है एक प्रसंग ।

''अरे टीनू ।''

''हाँ पापा ! क्या कह रहे हैं ?''

''ले, ये रुपये और बाहर साईकिल रखी है, ले जा और आधे घंटे में सब्जी ले आ ।''

''अभी जाता हूँ पापा ।''

दस रुपये और थैली लेकर टीनूजी निकल पड़े सब्जी लेने, आधे घंटे से ज्यादा समय हो गया फिर भी टीनू सब्जी लेकर नहीं आया । बेचैन बने पापा टीनू की तलाश में बाहर निकले और देखा तो टीनू साईकिल पर बैठा है और जोर-दोर से पैड़ल घुमाए जा रहा है । शरीर पसीने से तरबतर है और वह हांफ रहा है ।

''अरे टीनू ! सब्जी लाया ?''

''कैसे लाऊं, पापा ?''

''क्यों ?''

''देखो न पापा ! आधे घंटे से साईकिल चला रहा हूँ पर साईकिल है कि जरा भी आगे नहीं सरक रही हैं । पापा टीनू के पास गए और कान पकड़ कर बोले, ''मूर्ख ! साईकिल स्टेण्ड़ से नीचे उतारी ही नहीं, केवल हेंड़ल पकड़कर पैड़ल मारे जा रहा है, ऐसे कभी साईकिल आगे चलती है ?''

सब्जी मार्केट पहुँचने के लिए साईकिल ली, पर साईकिल लेने मात्र से काम नहीं चलता, उसे चलाने की विधि भी आनी चाहिए । जो विधिपूर्वक साईकिल चलाता है, वही अपना कार्य सिद्ध कर सकता है । यही बात सामायिक

पर भी लागू होती है ।

सामायिक समता प्राप्ति का विशेष अनुष्ठान है । यह अनुष्ठान करने के बावजूद समता नहीं आए तो सामायिक में कोई कमी रही, ऐसा नहीं समझना चाहिए बल्कि इसका कारण यह हो सकता है कि सामायिक करनेवाला किसी गैर समझ या गलत फहमी या अविधि का शिकार हुआ है । यदि समझ और विधि-शुद्धि के साथ सामायिक की जाए तो सामायिक आज भी सफल अनुष्ठान है ।

सामायिक छोटा पर सुंदर अनुष्ठान है, इसे जैसे-तैसे नहीं करना है । विधि और आदर के साथ जीवन में ओत-प्रोत करना है ।

आज भी कई ऐसे भाग्यशाली हैं, जिनकी सामायिक आदर्श प्रस्तुत करती है । उनका जीवन सामायिक की सौरभ से सुरभित है ।

सुरत में एक संपन्न श्रावक है । उनके जीवन में सामायिक की इतनी सुदृढ़ साधना कि उनके परिचय में एक बार भी जो व्यक्ति आए वह उनकी समता से भावित हुए बिना नहीं रह सके ।

मैं एक बार उनसे मिला । उनका गहरी श्रद्धा से छलकता कथन था, ''साहेबजी ! जिनशासन की प्रत्येक क्रिया अमृत तुल्य है । क्रिया करो और उसका फल नहीं मिले यह कोरा अवास्तविक आक्षेप ही है । सामायिक करो तो समता क्यों नहीं मिले ? गुड़ खाओ तो मिठास की अनुभूति होती ही है, ठीक ऐसे ही सामायिक करो तो समता आती ही है । मेरे जीवन में समायिक का बहुत उपकार है । चाहे जैसी परिस्थिति हो मन का संतुलन नहीं ड़िगता ।''

कितना सचोट और ठोस कथन है उनका । क्या उनका अनुभव हमारा अपना अनुभव नहीं बन सकता ? जरुर बन सकता है ।

ज्ञानी भगवंतों ने जिस प्रकार से सामायिक का निर्देशन किया है, उस प्रकार सामायिक की जाए तो यह सामायिक **'छिन्नइ असुहं कम्मं'** अशुभ कर्मों को छेदती है । यह तथ्य आज भी सार्थक है ।

आज तो सामायिक का अर्थ ही विकृत हो गया है । सामायिक यानि आसन बिछाकर ४८ मिनिट बैठे रहना और कैसे भी करके यह समय बीता देना। भले इसमें पूरे गाँव की बातें हो जाए, नींद ले ली जाए, कोई तकलीफ नहीं ।

सामायिक ली और थोड़ी देर बाद घड़ी देखना शरु...जहाँ ४८ मिनिट पूर्ण हुए कि बस, पारो सामायिक । चलो, हो गई सामायिक । ऐसी कितनी ही विकृतियों ने घर बना लिया है ।

परिणामतः सामायिक का कोई फल नहीं दिखने से कइयों को सामायिक के प्रति घृणा सी पैदा हो गई है और बहुत फलदायी होने के बाद भी लोग सामायिक के अनुष्ठान और उसके फल से वंचित रह जाते हैं । इस स्थिति को सुधारना बहुत जरुरी है, इसके लिए ही यह समझ दी जा रही है ।

सामायिक कितनी मूल्यवान है ? कितनी अद्‌भुत है ? इसकी विधि मर्यादा आम्नाय कितनी वैज्ञानिक एवं तथ्यपूर्ण है ? इन सब विषयों को स्पष्ट करने का प्रयत्न इस पुस्तक में किया गया है ।

आइए ! इसे जिज्ञासा और रसपूर्वक जाने, समझें और यथाशक्ति अमल करें ।

धन्ना ते जीअलोए, जावज्जीवं करंति जे समणा ।
सामाइअं विशुद्धं, निज्जं एव विचिंतिज्जा ।।

कइया णु अहं दीक्खं, जावज्जीवं जहद्विओ समणो ।
निसग्गो विहरिस्सं, एवं च मणेण चिंतिज्जा ।।

अर्थ : गृहस्थ नित्य इस प्रकार विचारे कि इस संसार में जो श्रमण भगवंत जीवनपर्यंत सुविशुद्ध सामायिक करते हैं, वे वास्तव में धन्य हैं ।

मैं कब दीक्षा लेकर साधु की तरह जीवन पर्यंत विहरुँगा ? ऐसा मन में चिंतन करे ।

—आत्मप्रबोध



सामायिक में त्रिविध-शुद्धि

जिस प्रकार साधु जीवन में कुछ निश्चित शुद्धियाँ आवश्यक है, वैसे ही यहाँ सामायिक में भी तीन प्रकार की शुद्धि अनिवार्य मानी जाती है ।

उनमें पहली है वातावरण शुद्धि,
दूसरी है उपकरण शुद्धि और
तीसरी है विधि-शुद्धि ।

१. वातावरण शुद्धि :

सामायिक अशुद्ध वातावरण में नहीं शुद्ध वातावरण में करना चाहिए । उपकरण यानि सामायिक करते समय उपयोग में आने वाले साधन भी शुद्ध और पर्याप्त होना चाहिए । विधि का शुद्ध होना भी नितांत आवश्यक है ।

पानी, उसका स्वभाव ही ऐसा है कि जिस आकार के पात्र में ड़ाला जाता है, वह वैसा आकार धारण कर लेता है । कटोरी में ड़ालेंगे तो कटोरी जैसा, लोटे में ड़ालेंगे तो लोटे जैसा, तपेली में ड़ालेंगे तो तपेली जैसा आकार बनेगा । जैसा पात्र वैसा पानी का आकार ।

मन भी ऐसा ही है । जिस वातावरण में रहता है उसका प्रभाव ग्रहण कर लेता है । अच्छे वातावरण में अच्छा और बुरे वातावरण में बुरा असर ग्रहण करता है । बल्कि अच्छे वातावरण की बजाय बुरे वातावरण का प्रभाव जल्दी ग्रहण करता है । इसका कारण है कि भूतकाल में इसे खराब वातावरण ही अधिक मिला है । इससे खराब वातावरण के संस्कार ज्यादा दृढ़ हुए हैं जिससे खराब निमित्त मिलते ही यह इस तरफ ढ़लने लगता है । अच्छा वातावरण अपेक्षाकृत कम मिलने से उसका प्रभाव लाने के लिए प्रयत्न करने पड़ते हैं । अच्छे वातावरण का प्रभाव प्रयत्न साध्य है । इससे ही बुरे वातावरण के प्रभाव से मुक्त करने और अच्छे वातावरण का प्रभाव पाने के लिए अच्छे वातावरण का विशेष महत्व बताया

गया है ।

सामायिक जैसी महत्वपूर्ण क्रिया करते समय अपना मन कहीं अशुभभाव में नहीं चला जाए इसके लिए जहाँ अशुभ निमित्त नहीं मिलते हों, ऐसे वातावरण में सामायिक करना चाहिए ।

केमरे का रोल धोने के लिए 'ड़ार्करुम' की ही जरुरत होती है । रोल ड़ार्करुम में ही निकलती और धुलती है । यदि प्रकाश वाले स्थान में रोल खोल दिया जाए तो सारे फोटो बिगड़ जाते हैं । ऐसे ही सामायिक करते अशुभ संस्कारों को धोने के लिए ड़ार्करुम की तरह अच्छे वातावरण की जरुर होती है । अच्छे से अच्छे वातावरण में ही सामायिक सफल बन सकता है और इसके लिए उपाश्रय एकदम उचित स्थान है ।

घर और उपाश्रय में बहुत अंतर है । घर में रखी हुई एक-एक वस्तु पर पड़नेवाली नजर इन्द्रियों के विषयों को बहलाने वाली होती है । घर में होने वाली बातें और आवाजें भी उसी दिशा में खींचने वाली होती है । घर में मिलने वाला हर निमित्त भौतिक-वैषयिक विचारों को ही उत्तेजन देने वाला होता है । उपाश्रय का वातावरण इससे बिलकुल विपरीत होता है । उपाश्रय में दिखाई देने वाली हर वस्तु आत्मोत्थान की दिशा-सूचक होती है । उपाश्रय में होने वाली बातें आत्म-विकास लक्षी और संवेग-निर्वेद से भरपूर होती है और उपाश्रय में मिलने वाले निमित्त अनायास ही वैराग्य जगाने वाले होते हैं, आर्त्त और रौद्र ध्यान से बचाने वाले होते हैं ।

इसके अलावा घर अनुकूलता से भरपूर स्थान होता है । घर में सुख-सामग्री यत्र-तत्र बिखरी होती है और इससे ही मामूली भी दुःख आते ही उसे दूर करनेवाले साधन सामने ही होने से मन तुंरत इस साधन का उपयोग करने को उकसाता है और मन का बल यदि प्रबल बन गया तो व्रत-पच्चक्खाण तोड़ने तक की घड़ी घर में आ सकती है । उस साधन का उपयोग करने के संस्कार ठसाठस भरे होते हैं, तब व्रत में अटल रहना मुश्किल बन जाता है ।

अंधेरे ने आकुल किया, प्रकाश का उपयोग कर लिया । गर्मी लगी, पंखे की सेवा ले ली । रेड़ियो में अच्छा सा गाना आया, सामायिक में होने के बावजूद कान बेरोकटोक वहाँ पहुँच ही गए, टी.वी. चालू हुआ, आँखे रोके नहीं रुकी । भूख लगी, सामने खाद्य-सामग्री नजर आई और मुंह में पानी आ गया । कोई

आत्मीय-जन आया कि मन मिलने को आतुर हो गया । ऐसे तो कई निमित्त घर में कदम कदम पर मिलते हैं । ऐसे वातावरण में की गई सामायिक प्रायः शुद्ध नहीं होती ।

उपाश्रय में स्थिति बिल्कुल बदली-बदली होती है । उपाश्रय में सुख की सामग्री कहाँ से मिले ? इन्द्रियों को बहकानेवाले निमित्त की परछाई भी नहीं मिलती । उपाश्रय में तो प्रतिकूल सामग्री की भरमार होती है । शरीर की पोषक-सामग्री नहीं मिलने से परिषह (तकलीफ) सहन करने के अवसर सहज उपलब्ध होते हैं । इससे आराधना १०० टंच सोने जैसी शुद्ध बन सकती है । सुविधापूर्ण माहौल में प्रमाद सहजता से प्रवेश कर लेता है जबकि प्रतिकूलता भरे वातावरण में प्रमाद नहीं पहुँच सकता ।

घर पर मिलने वाले व्यक्ति कैसी बातें करेंगे ? घर-संसार और व्यवहार की ही न ? जबकि उपाश्रय में मिलने वाले कल्याणमित्रों की बातों का सुर आराधनालक्षी होता है । आराधना में साथ देनेवाले भी अच्छी संख्या में मिल जाते हैं, जिससे आराधना में भावोल्लास भी बढ़ता है ।

किसी भी प्रवृत्ति करने में जब कंपनी-सहकार मिलता है, तब प्रवृत्ति में विशेष उल्लास रहता है, यह सर्वविदित तथ्य है और वैसे भी यह जमाना कंपनी का है ।

साथ-सहकार ज्यादा होने से एक-दूजे को एक-दूजे के आलंबन भी अच्छे मिल जाते हैं । कितनी बार ऐसे सुंदर आलंबन मिलने से इतना ऊँचा लाभ मिल जाता है कि जिसकी कल्पना करना भी दुष्कर हो ।

उपाश्रय धर्माराधना का स्थल होने से यहाँ आलतू-फालतू या संसार रसिक जीव तो आने वाले ही नहीं हैं । जो कोई आनेवाले हैं, वे भी आराधना के लक्ष्य से ही आनेवाले हैं, इसलिए उपाश्रय में जितने समय रहना है उतने समय अशुभ व्यक्तियों से संपर्क नहीं होगा और अच्छे व्यक्तियों से संबंध होगा जो हमें ऊँचा चढ़ानेवाला होता है ।

मुंबई में गोड़ीजी के उपाश्रय में करीब साठ वर्ष पहले चीमनलाल पटवा का एक आदर्शग्रुप था, जिसमें लगभग साठ सदस्य थे । ग्रुप का माहौल आराधना से भरपूर था । हर सदस्य ऐसी धर्म रुचिवाला था कि संपर्क में आनेवाला भी उनके जैसा ही बन जाता ।

ये कल्याणमित्र एक दूसरे के लिए ऐसे प्रेरक और आलंबनभूत बने कि कुछ ही समय में अधिकतर आराधक साधुता के साधक बन गए अर्थात् साधुजीवन के धारक बन गए ।

एक छोटे-से निमित्त को पाकर चीमनभाई पटवा आगमोद्धारक पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी म. के शिष्य पू. मुनिश्री चंद्रसागरजी म. बने कि बस शासनरत्नों की लाईन लग गई । पू.आ. देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी म.सा., पू. उपाध्याय श्री धर्मसागरजी म., पू. पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म., पू.आ. भद्रंकरसूरीश्वरजी म.सा., पू.आ. श्री विकासचंद्रसूरीश्वरजी म. एक के बाद एक रत्न निकलते गए और उनके तेज से संपूर्ण जिनशासन जगमगा उठा ।

आज श्रमणवर्ग में जो ठीक-ठीक संख्या दिखाई देती है, उसमें गोड़ीजी की इस कल्याण मित्र मंड़ली का कम योगदान नहीं है ।

अपनी बात यह है कि सामायिक करने के लिए उपाश्रय बहुत उपयुक्त और संगत स्थान है । वहाँ अच्छे निमित्त बड़ी संख्या में मिलते हैं और इससे विधि शुद्धि, आराधना शुद्धि भी बराबर बनी रह सकती है ।

श्री श्राद्धविधि ग्रंथकार तो यहाँ तक फरमाते हैं कि घर पर सामायिक करने के बदले उपाश्रय में करो तो एक आयंबिल का लाभ मिलता है ।

और इसके बदले, हमें सामायिक लेना तो आता ही है न और फुर्सत भी है । हमें किसकी गरज है ? उपाश्रय में भी ४८ मिनिट बीताने और यहाँ भी बीताने, क्या फर्क पड़ता है ? अपना घर ही अच्छा । भला कौन उपाश्रय जाए ? ऐसा विचार कर जो घर पर ही सामायिक की जाए तो एक आयंबिल का प्रायश्चित्त बताया है । इससे समझना चाहिए कि उपाश्रय में सामायिक करने से कितना लाभ मिलता है ?

आज लगभग सभी की मान्यता ऐसी है कि उपाश्रय यानि साधु के रहने का स्थान । यह मान्यता बराबर नहीं है । उपाश्रय साधु के लिए नहीं श्रावकों को सामूहिक आराधना करने का स्थान है । उपाश्रय शब्द का अर्थ ही इसकी पुष्टि करता है ।

उप यानि पास में

आश्रय यानि आश्रयः आसरा

जहाँ परमात्मा के पास आसरा मिलता है, वह स्थान उपाश्रय कहलाता

है । इससे श्रावक के लिए इसका विशेष महत्व होता है ।

महापुरुषों ने यहाँ तक बताया है कि श्रावक उपाश्रय में तो सामायिक करने जाए ही पर ऐसे वैसे नहीं जाए, ठाठ-बाट से जाए । सामान्य श्रावक भले ही ऐसे चले जाए पर संपन्न श्रावक तो लोगों के ख्याल में आए, इस तरह गौरव पूर्वक जाए । इससे लोग जैन धर्म की ओर आकर्षित होते हैं और सोचते हैं कि ऐसे धनाढ्य व्यक्ति सामायिक करते हैं तो हमें भी सामायिक करना चाहिए । कितना उत्कृष्ट अनुष्ठान है सामायिक । तभी तो ऐसे लोग भोग-सुखों को छोड़कर भी सामायिक करते हैं ?

मगध सम्राट् श्रेणिक एक सामायिक का फल लेने के लिए स्वयं पुणिया श्रावक के छोटे से घर पर पहुँचे और हाथी से नीचे उतरकर पुणिया श्रावक से एक सामायिक फल देने की विनंति की । इतना ही नहीं एक सामायिक के बदले अपना विशाल साम्राज्य पुणिया श्रावक के चरणों में अर्पण करने की तैयारी दिखाई । इस दृष्टांत से सामायिक की महत्ता समझी जा सकती है ।

बड़े-बड़े व्यापारी, वकील, ड़ॉक्टर, मंत्री धर्माराधना करें तो उनके पीछे बहुत लोग धर्म की ओर आकर्षित होकर धर्माभिमुख बन सकते हैं ।

पूर्वकाल में तो रिवाज था कि धनवान श्रावक / श्रेष्ठिवर्य ठाठ-बाट से सामायिक और पूजा करने जाते । उन्हें देख दूसरे कई लोग साथ में जुड़ते । आज भी कहीं कहीं ऐसे श्रावक देखने सुनने में आते हैं । सुरत शहर में एक श्रावक है, जिन्हें नियम है कि जिस दिन सामायिक नहीं हो उसके दूसरे दिन दस हजार रुपये नाम की इच्छा रखे बिना मंदिर के भंड़ार में ड़ाल देना । इस प्रतिज्ञा का वे चुस्तता से पालन करते हैं ।

प्रसिद्ध-तीर्थ भेरु-तारक के प्रणेता श्री ताराचंदजी संघवी भी इसी प्रतिज्ञा के साथ नित्य सामायिक की आराधना करते थे।

इससे सामायिक की कितनी महिमा फैलती है ।

अपनी मूल बात यह है कि सामायिक करने के लिए सर्वप्रथम वातावरण की शुद्धि जरुरी है । यह शुद्धि जितनी उपाश्रय में संभव है उतनी अन्यत्र कहीं नहीं इससे सामायिक का वास्तविक लाभ पाने के इच्छुक को उपाश्रय का ही आग्रह रखना चाहिए ।

उपाश्रय की महत्ता जानने के बाद वातावरण शुद्धि के अंतर्गत पूज्य

गुरुदेवश्री के सानिध्य का भी विचार जरुरी है / हो सकता है कि उपाश्रय घर के एकदम नजदीक हो, पर गुरुदेवश्री दूर विराजमान हों तो ? तो नजदीकी उपाश्रय के आग्रह को छोड़कर पूज्य गुरुदेवश्री जहाँ विराजित हों, वहाँ जाकर सामायिक करना चाहिए ।

'गुरुनिश्रा' जैसी-तैसी बात नहीं है । अत्यंत महत्वपूर्ण बात है । छोटी से छोटी क्रिया भी गुरु निश्रा में ही करना चाहिए, ऐसा महापुरुषों ने बताया है ।

भले सूत्र आते हों, विधि आती हो, सामायिक के विषय में अच्छी समझ हो पर गुरुनिश्रा की उपेक्षा की जाए तो सब व्यर्थ हो जाता है ।

सामायिक आदेश लेकर ही करना चाहिए । ज्ञानी भगवन्तों की इस प्रकार आज्ञाका पालन भी इससे सुकर हो जाता है ।

आदेश कब ले सकते हैं ? गुरुदेव हों तब न ! गुरुदेवश्री ही नहीं हो तो आदेश लेंगे किसके पास । मन में ही आदेश मांगो और मन में ही लो, इसका क्या अर्थ ? यह तो मन से विवाह करने और मन से विधुर होने जैसी स्थिति है । आदेश लेना यह गुरुतत्व का उत्तम विनय है और विनय धर्म का प्रथम सोपान है । गुरुदेव का विनय किए बिना किसी भी क्रिया का आरंभ ही नहीं बताया है । विनय व्यक्त करने के लिए गुरु से आदेश मांगना बहुत जरुरी है ।

केवली भगवंत जैसे केवली भगवंत भी छद्मस्थ गुरुदेव का विनय नहीं चूकते । केवल ज्ञान हो गया हो, पर संयोगवश गुरुदेव को पता नहीं चला हो तब केवली भी छद्मस्थ गुरुदेव से आदेश मांगने के साथ ही क्रिया करते हैं । केवली तो ठेठ तेरहवें गुणस्थानक पर होते हैं और गुरु देव छठे गुणस्थानक पर होते हैं फिर भी तेरहवें वाले छठे वाले से आदेश मांगकर ही क्रिया करते है ।

साध्वी पुष्पचूला को केवलज्ञान होने पर भी गोचरी लाने, आलोवने की क्रिया गुरुदेवश्री के आदेशपूर्वक ही करते थे । चंड़रुद्राचार्य के शिष्य केवलज्ञानी होने पर भी गुरुदेव का उत्कृष्ट विनय करते हैं ।

आदेश मांगकर ही क्रिया करना चाहिए और यह तभी संभव है जब पूज्य गुरुदेवश्री उपस्थित हों । इससे स्पष्ट है कि सामायिक गुरुनिश्रा में ही करना चाहिए ।

गुरु-निश्रा में सामायिक करने से विनय प्रकट होता है । साथ में गुरुदेवश्री की ओर से क्रिया-शुद्धि और विधि मर्यादा की शास्त्रोक्त प्रेरणा भी प्राप्त होती है

। इससे क्रिया आराधना विधि घोटालोंवाली नहीं रहते हुए शुद्ध बन जाती है ।

वो महातपस्विनी और अखंड़ चारित्र पालिका सुकुमालिका...

कैसा कठोर जीवन-कैसी कठिन साधना ?

किंतु गुरुणीजी की आज्ञा-उल्लंघन ने कितना भवभ्रमण बढ़ा दिया ।

साधना और तपस्या तो जबर्दस्त थी, वैराग्य भी इतना ही प्रबल था । मानव-तन मिला है तो अब कोई कमी नहीं रखना । शरीर में जो सत्व है, तत्व है, उसे आत्मोद्धार के लिए निचो देना है । यही उनका निर्णय था ।

वाचना में जिनकल्पी की आचार संहिता सुनकर मन में निश्चय किया कि मैं भी जिनकल्पी जैसा उच्च कक्षा का चारित्र पालूँ ।

गुरुवर्या से अनुमति पाने गई । ''गुरुदेव आज्ञा दीजिए, मैं भी जिनकल्पी की तरह रात्रि में श्मशान, खंड़हर या शून्यगृह में जाकर कायोत्सर्ग करना चाहती हूँ ।''

''बहन ! हमारे लिए रात्रि में बाहर जाना निषिद्ध है । बाहर ओटले पर भी नहीं रहा जाता तो तुम तो गाँव बाहर जाने की बात करती हो तो यह कैसे संभव है ? हम स्त्री-शरीर हैं, इससे यह हमारा काम नहीं है, यह काम तो पुरुषों का है ।''

फिर भी सुकुमालिका का आग्रह चालू ही रहा । गुरुवर्या ने बहुत समझाया, नहीं मानी और उन्हें ड़रपोक मान उनकी आज्ञा की अवज्ञा करके पहुँची श्मशान में और रही कायोत्सर्ग ध्यान में । शुरु में तो कोई अड़चन नहीं आई पर एक दिन सब गुड़-गोबर हो गया । हुआ यह कि सुकुमालिका रात्रि में शून्यघर में ध्यान-मग्न है । इतने में सुमधुर संगीत कानों से टकराया । सुकुमालिका का मन धीरे-धीरे आकर्षित होने लगा । पहले तो मन को बहुत समझाया पर जीत तो मन की ही हुई । आँखे खोली और संगीत की दिशा में द्यष्टि पहुँची । नजर आई एक वेश्या जिसकी सेवा पाँच-पाँच पुरुष कर रहे थे ।

'ओह ! कितना अद्‌भुत दृश्य ! यह स्त्री कितनी भाग्यशाली है, बिना धर्म किए इतना वैभव इतना विषयसुख । मैं तो धर्म कर करके मर गई तो भी मुझे कुछ नहीं मिला । इस भव में तो कुछ मिले ऐसा नहीं लगता पर हाँ आने वाला भव तो है । बस, आते भव में मुझे ऐसा सुख मिले । इस विचार के माध्यम से साध्वी सुकुमालिका ने निदान (नियाणा) कर लिया ।

'यदि मेरे तप, त्याग और संयम में शक्ति हो तो आगामी भव में मुझे पाँच-पाँच पति की प्राप्ति हो ।'

बस, हो गया । कर्म की जंजीरों के टूटने में अब थोड़ा ही समय बाकी था, मोक्ष नजदीक में ही आ रहा था और तपस्विनी भूल कर बैठी । खतरनाक निदान कर लिया । गुरुवर्या ने निदान की इस गांठ को छुड़वाने के बहुत प्रयत्न किए पर सफल नहीं हुए । आखिर इस गांठ के साथ ही सुकुमालिका मृत्यु को वरी और भविष्य में पांच पांड़वों की पत्नी द्रौपदी के रुप में जीवन बिताना पड़ा । करीब आया हुआ मोक्ष दूर चला गया ।

आज भी वह आत्मा पाँचवे देवलोक में इसके पश्चात्ताप में तिल-तिल कर समय गुजार रही है । यह है गुरु-अवज्ञा का दुष्ट-परिणाम ।

वो कुलवालक ! कितने बड़े तपस्वी थे । असाधारण साधक थे । कुदरत भी उनके अनुकूल होकर चलती थी । भक्तों की भीड़ और अपार मान-सम्मान पर गुरुद्रोह के दोष से वे भी संयम-भ्रष्ट, समाधि भ्रष्ट और अंत में सद्गति भ्रष्ट बन गए । गुरु की उपेक्षा कितना कटु परिणाम लाती है ।

सावधान !

गुरु-निश्रा कभी नहीं छोड़ना यह तो हमारी तरण-नौका है । इससे ही तो महामंत्री पेथड़शाह प्रतिक्रमणादि क्रिया गुरु निश्रा में ही करने का आग्रह रखते थे ।

बत्तीस मील विस्तार वाली और बानवे लाख गाँव की राजधानी मांड़वगढ़ के पाँच सौ मंत्रियों के नायक, राजनीति में फँसे होने के बावजूद जिनपूजा-प्रतिक्रमणादि अनुष्ठान नित्य करते और वे भी गुरु-निश्रा में ही ।

मांड़वगढ़ में तब ३२० उपाश्रय थे । देवसी प्रतिक्रमण के लिए ५ मील और पाक्षिक प्रतिक्रमण के लिए १० मील तक गुरु-निश्रा पाने के लिए जाने की तैयारी रहती थी पेथड़शाह की ।

'ओह ! इतना समय का बलिदान ।'

जब वस्तु की महत्ता समझ में आ जाए तब चाहे जैसा त्याग करना पडे कठिन नहीं लगता । यह गुरु-निश्रा का महत्व है । अपनी शक्ति अनुसार गुरुनिश्रा के लिए आग्रह रखना चाहिए और जो गुरुदेव का योग ही नहीं मिले तो स्थापनाजी के सामने सामायिक करें ।

'गुरु विरहंमि ठवणा' गुरुदेव की अनुपस्थिति में गुरु के स्थान पर स्थापनाजी को मानने का विधान है । गुरुदेव नहीं हो, स्थापनाचार्यजी (ठवणी पर पाँच चंदनक वाली पोटली) भी नहीं हो तो जिसमें नवकार और पंचिंदिय सूत्र आलेखित हों ऐसी पुस्तक की गुरु के रुप में स्थापना करना चाहिए । पुस्तक को नाभि से ऊँचे स्थान पर रखकर पुस्तक की ओर दाँई हथेली सीधी रखकर नवकार और पंचिंदिय गिनकर स्थापनाजी स्थापने हैं ।

हथेली की इस स्थिति को सर्पमुद्रा कहा जाता है । किसी भी क्रिया में जब स्थापना की जाती है तब सर्पमुद्रा ही की जाती है । जैसे सर्प ऊँचा होकर फुत्कार करता है, वैसे ही स्थापना करते समय ऊँची हथेली करके अंगुलियाँ थोड़ी सी झुकती हुई रखी जाती है । अंगुलियों में शक्तियाँ प्रवाहित होती रहती हैं । सर्पमुद्रा के माध्यम से इन शक्तियों का अवतरण स्थापनाजी में किया जाता है । जब तक सामायिक पूर्ण नहीं होती तब तक स्थापनाजी स्थिर रखे जाते हैं ताकि अवतरित शक्ति बिखर न जाए ।

इस प्रकार गुरुदेव के वियोग में स्थापनाजी में गुरु-तत्व की स्थापना की जाती है ।

प्रश्न : अब तो पूज्य गुरुदेवश्री की उपस्थिति में भी स्थापनाजी होते हैं तो फिर गुरु के विरह में स्थापनाजी रखने की बात ही कहाँ रही ?

उत्तर : पूर्वकाल में हरेक क्रिया पूज्य गुरुदेवश्री के सामने ही की जाती थी, पर बाद में जीवों की पात्रता के तारतम्य के कारण गुरुदेव की हाजरी में भी स्थापनाजी रखने की परंपरा शुरु हुई ।

प्रश्न : हर स्थापनाजी के सामने क्रिया करते समय स्थापना चाहिए ?

उत्तर : नहीं, चार ड़ंड़ी की ठवणी पर जो पोटली जैसी रखी जाती है (सभी गुरु भगवंतों के पास होती है ।) उनके सामने क्रिया करते समय नवकार-पंचिंदिय से स्थापना जरुरी नहीं है क्योंकि वे तो स्थापनाजी प्रतिष्ठा कल्प में बताई विधि से पू. आचार्य भगवंत द्वारा अठारह अभिषेक कराए होते हैं । वो हमेशा स्थापित ही होते हैं । जब पुस्तक के सामने सामायिक करना हो तब ही नवकार पंचिंदिय सूत्र से स्थापन की आवश्यकता होती है ।

प्रश्न : पोटली में गोल-गोल क्या होते हैं ?

उत्तर : इन्हें चंदनक कहा जाता है । शंख, सीप में जैसे जीव होता है,

वैसे ही ये भी समुद्र में पैदा होने वाले बेइन्द्रिय जीव हैं । जब इनमें से जीव निकल जाता है, तब खोल को व्यवस्थित कर स्थापनाजी के रुप में उपयोग किया जाता है । इनमें वर्तुल (गोल-आकार) होने से इनकी पसंदगी की गई है ।

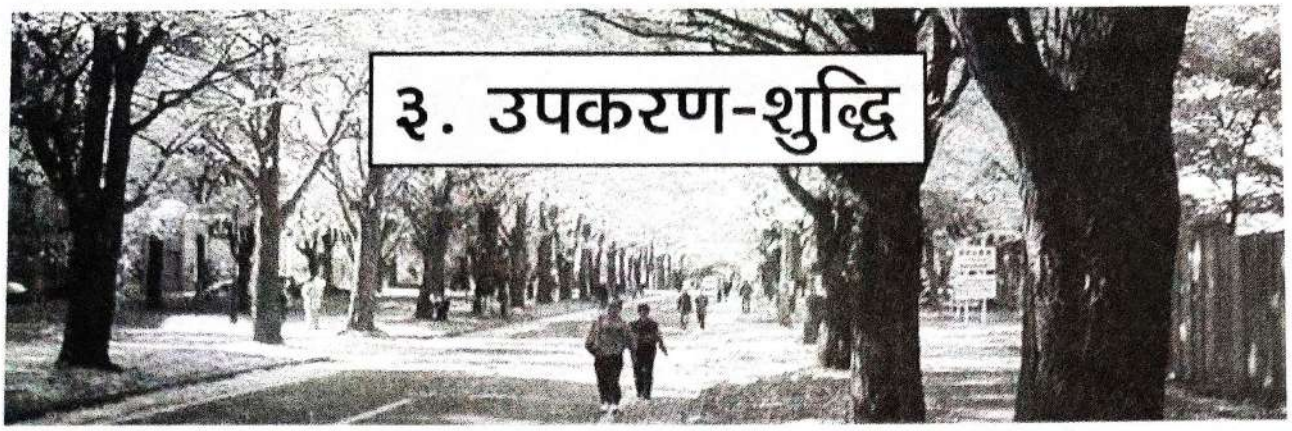
प्रश्न : ऐसा क्यों ?

उत्तर : स्थापनाजी में सुधर्मास्वामीजी की चरण-स्थापना है । उनके चरण में आवर्त्त का चिह्न था इसके प्रतीक के रुप में चंदनक का उपयोग किया जाता है । इससे यह भाव पैदा होता है कि हम सुधर्मा स्वामी के चरण की उपासना कर रहे हैं । चंदनक का सामूहिक वस्तुओं की सूची में गोमती चक्र नाम है । गोमतिचक्र के अनेक उपयोग और ढ़ेरों लाभ बताए हैं । परंतु गौमतीचक्र का उपयोग स्थापनाजी के रुपमें नहीं लिया जाता है। क्योंकि दोनों के स्वरुप में अन्तर है। हमारी परंपरा में चन्दणग को ही स्थापनाजी के रुप में मान्य किये गये है। अपनी मूल बात यह है कि सामायिक करते समय वातावरण शुद्धि जरुरी है जो उपाश्रय में उपलब्ध है और साथ में पूज्य गुरुदेव की निश्रा भी कम जरुरी नहीं है ।

प्रश्न : तो क्या इसका मतलब यह है कि गुरुनिश्रा नहीं हो या उपाश्रय में जाने की अनुकूलता नहीं हो तो सामायिक नहीं करना ?

उत्तर : नहीं, सामायिक तो अवश्य करना चाहिए । अविधि-दोष के भय से मार्ग को ही छोड़ देना बिल्कुल भी उचित नहीं है । जहाँ तक हो सके वातावरण की शुद्धि के लिए उपर्युक्त विधि से ही सामायिक करें । नहीं हो सके तो अपने घर में अलग से 'सामायिक-कक्ष' रखना चाहिए जिसमें सामायिक की महत्ता पुष्ट करनेवाले ही आलंबन होना चाहिए । उस कक्ष में पूर्वमहर्षियों या गृहस्थों के भावपूर्ण चित्र लगाने चाहिए जिन्हें देखकर सामायिक में सुखशीलतादि से दूर रहने की प्रेरणा मिले । ऐसे वातावरण में सामायिक करना चाहिए । यह हुई प्रथम वातावरण शुद्धि ।





३. उपकरण-शुद्धि

दूसरी शुद्धि है उपकरण की ।

यहाँ पहला प्रश्न है सामायिक करने के लिए कितने उपकरण चाहिए ? और इससे भी पहले यह प्रश्न होता है कि उपकरण यानि क्या ? हमारे यहाँ शब्द-व्यवहार भी बहुत सुसंगत है । शब्द रचना ही इस प्रकार है कि शब्द समझने की कोशिश की जाए तो साथ में रहस्य भी समझ में आ जाए । उपकरण शब्द को ही लेते हैं,

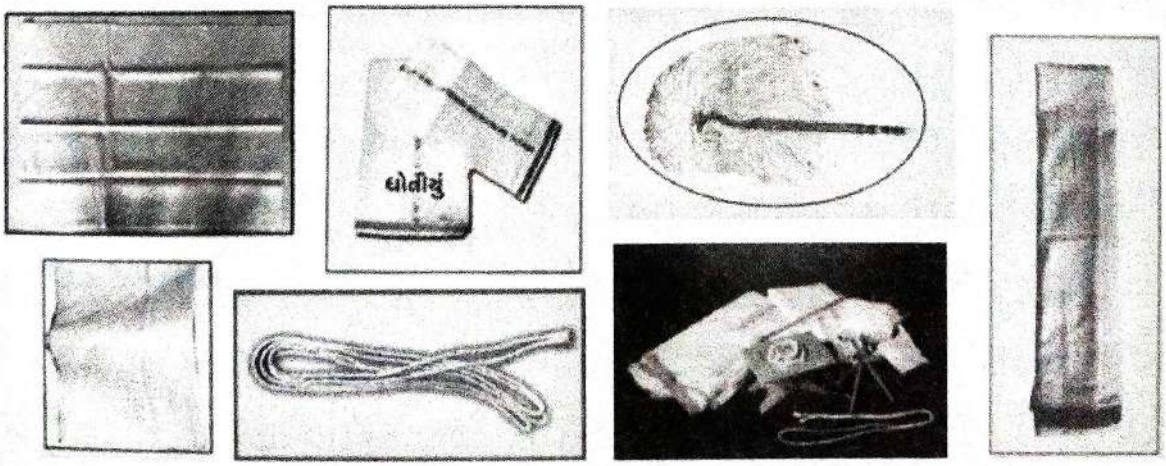
उप = पास में, समीप में

करण = की जाए

जिसके माध्यम से आत्मा को समता के समीप की जाए, लाई जाए अथवा दूसरी व्याख्या कि जो उपकार करे वो उपकरण आत्मा को आराधना में सहयोगी हो कर उपकार करे वह उसे उपकरण कहते है।

अलग अलग क्रियाओं की सिद्धि के लिए अलग-अलग उपकरण बताए हैं । सामायिक की सिद्धि के लिए भी कुछ उपकरण निर्देशित हैं ।

आमतौर पर यही समझा जाता है कि सामायिक के लिए तीन उपकरण पर्याप्त हैं, पहला शुद्ध वस्त्र, दूसरा कटासना और तीसरा उपकरण मुहपत्ति 'मोपत्ति' बस / इन तीनों उपकरणों से सामायिक हो सकती है ।



परंतु वास्तव में उपकरण तीन नहीं छह हैं

१. शुद्ध अधोवस्त्र (धोती)

२. कटासना

३. मुहपत्ति

४. चरवला

५. खेस

६. कंदोरा

इन छहों उपकरणों के उपयोगपूर्वक सामायिक की जाए तब उपकरण-शुद्धि कही जाती है, तब वस्तुतः सामायिक हो सकती है ।

इन छहों उपकरणों की अपनी-अपनी महत्ता और विशेषता है । इनके विषय में विस्तृत चर्चा हो सकती है, पर यहाँ हम संक्षेप में समझने का प्रयास करेंगे ।

वस्त्र शुद्धि

अठारह पापस्थानक की प्रवृत्ति करते समय उपयोग में आए हुए वस्त्रों का प्रभाव मन पर भी पड़ता है, इससे बचने के लिए सामायिक में वस्त्र शुद्धि जरुरी है ।



शुद्ध यानि वस्त्र सिर्फ धोए ही नहीं साथ-साथ सिले हुए, जोड़े हुए फटे हुए भी नहीं होने चाहिए ।

वस्त्र स्वच्छ, अखंड़, बिना सिले, बिना जुड़े होने चाहिए । इस शर्त से पता चलता है कि सामायिक में धोती और खेस ही चाहिए । कुर्ता पेंट, पायजामा, हाफपेंट, निकर केप्री आदि वस्त्र नहीं चलते क्योंकि, ये सब सिलाई वाले होते हैं जबकि सामायिक में अखंड़ वस्त्र चाहिए ।

यह शर्त केवल सामायिक की नहीं, हर धार्मिक प्रवृत्ति में लागू होती है ।

जहाँ जोड़ आया वहाँ गाँठ आई ही समझो और गाँठ-ग्रंथि धर्म की प्रवृत्ति में चाहिए ही नहीं । ग्रंथि आई कि साथ में अशुद्धि, अपूर्णता, अटकाव आए ही समझो ।

यह मान्यता केवल जैनधर्म में ही नहीं, अन्य धर्म में भी स्वीकृत है और वहाँ भी सिले-जोड़ वाले कपड़े अमान्य हैं ।

हाँ, महिलाओं के वस्त्र सिले हुए, जोड़े हुए हों तो चल सकते हैं, क्योंकि उनके शरीर के अंगोपांग के आवरण के लिए दूसरे कोई विकल्प नहीं है । लेकिन उन वस्त्रों में भी सिलाई और जोड़ कम से कम होना चाहिए । चल सकने का

मतलब 'अंगुली पकड़ते कलाई पकड़ी जैसा नहीं होना चाहिए ।

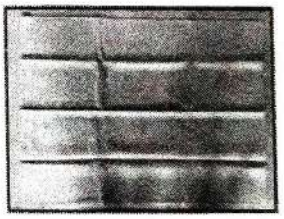
पुरुषों को सामायिक में धोती का ही उपयोग करना चाहिए वह भी लुंगी की तरह पहनकर नहीं, काछली, पाटली सहित पहनना चाहिए । काछली पाटली सिवाय वस्त्र पहनने का अधिकार केवल साधु भगवंतो को ही है ।

जिसका जितना अधिकार क्षेत्र हो, उतने में ही कार्य करना चाहिए । अधिकार-क्षेत्र से बाहर जाने की कोशिश अनुचित है, यह एक मर्यादा है ।

मद्रास के पास कांचीपुरम में कामाक्षीमाता का मंदिर है प्रतिदिन १५००० से अधिक दर्शनार्थी आते है। प्रत्येक पुरुष को अधोवस्त्र धोती होना जरुरी होता है। हर आदमी सफेद लुंगी और उपरका भाग खुला होना । परंतु वस्त्र बिना सिये हुए ही पहनना। इसी प्रकार इसलाम धर्मी भी हज करने जाते है तब भी बिना सिये हुए ही वस्त्र उपयोगमें लेते है।

धोती भी स्वच्छ और प्रमाणसर होना चाहिए, छोटी नहीं होना चाहिए । आज लगभग ऐसा दिखाई देता है कि अन्य स्थान पर पहनने की धोती या दूसरे वस्त्र व्यवस्थित और सुंदर होते हैं पर सामायिक की धोती केमरे में कैद करने लायक होती है, या तो वो मैली होती है या फटी हुई या फिर छोटी । यह प्रवृत्ति क्रिया-अभिरुचि में कमी बताती है । पुरुषों को वस्त्र-धोती और खेस तथा बहनों को तीन वस्त्रों का उपयोग करना चाहिए ।

कटासना



दूसरा उपकरण है कटासना ।

इसे कहीं बेटका, कहीं आसन, कामलिया आदि भी कहा जाता है । सही नाम है कटासना यह भी रहस्य से भरपूर नाम है ।

कष्ट-कष्ट वाला आसन, कष्टासन । इसी कष्टासन पर से शब्द बना है, कटासना । जिस पर बैठने से हमें कष्ट का अनुभव हो, उसे कटासना कहा जाता है ।

यह कटासना गरम ऊन का होना चाहिए । साथ में इकहरी तह वाला ही होना चाहिए, दुहरी या तिहरी नहीं । तात्पर्य यह है कि इतना ही बड़ा होना चाहिए कि बैठते समय उसकी घड़ी करके ड़बल नहीं करना पड़े, वरना उसकी मोटाई बढ़ जाती है । कोई कोई संथारा भी तह करके बिछा देते हैं, पर उसमें कष्ट की अनुभूति होने का प्रश्न ही नहीं रहता ।

कटासना ऊन का इसलिए होना चाहिए कि ऊन में अशुभतत्वों को छोड़ने और शुभतत्वों को ग्रहण करने की शक्ति छुपी हुई है । एक और फायदा यह है कि पृथ्वी में बिजली बहती है । जब हम आराधना-साधना-जाप-ध्यानादि करते हैं तब हममें रहा हुआ तैजस् (विद्युत) शरीर ज्यादा सक्रिय हो जाता है । इससे पैदा होने वाली शक्ति को धरती में बहनेवाली विद्युत खींच ना ले इसके लिए अवरोधक तत्व के रुप में ऊन का कटासना माध्यम बनता है । त्रसकाय के जीवों की रक्षा भी ऊन से सहजता-सरलता से होती है, इससे भी ऊन का विधान है ।

वैसे भी स्थावरकाय (पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकास, वायुकाय, वनस्पतिकाय) के खाल से बने वस्त्रों में उपर्युक्त शक्ति संभवित नहीं है, त्रसकाय (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिंद्रिय, पंचेन्द्रिय) के शरीर से बने वस्त्रों में शक्ति का संग्रहण होता है । यह बात मैंने अपनी पुस्तक **पूजन कैसे करुं ?** में समझाई है।

ऊन के साथ-साथ कटासना सफेद भी होना चाहिए । रंग का भी अपना महत्व है । वर्ण का भी एक आलंबन है । जैसा वर्ण का आलंबन वैसा प्रभाव होता है । श्वेत वर्ण का आलंबन सात्विकता को उभारता है और सात्विकता साधना या उपासना का आवश्यक तत्व है, इससे आसन सफेद होना चाहिए ।

कटासना प्रमाणसर भी होना चाहिए । न तो बहुत छोटा और न ही बहुत बड़ा । बड़ा होने पर शरीर का हलन-चलन बढ़ने की संभावना रहती है, जो अनिच्छनीय है और बड़ा आसन अधिक स्थान घेरता है जिससे जयणा (यतना) का पालन ठीक से नहीं हो पाता ।

छोटे आसन पर शरीर आसन से बाहर चला जाता है उससे सूक्ष्म जीवों की विराधना का संभव है और ऊनतत्व का जो लाभ मिलना चाहिए उससे वंचित रहने का अवसर आता है ।

तो फिर कटासना कैसा होना चाहिए ?

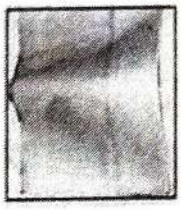
ज्ञानी भगवंतों ने कटासने पर बैठने वाले व्यक्ति के ड़ेढ़ (१.५) हाथ जितना लंबा-चौड़ा (समचौरस) आसन का माप बताया है । ऐसे आसन पर व्यवस्थित बैठा जा सकता है ।

सामायिक, प्रतिक्रमण और पौषध में बिना कटासना बिछाए जमीन पर नहीं बैठा जा सकता, क्योंकि जमीन पर नजरों से नहीं दिखने वाले सूक्ष्म जीव-जंतुओं को हमारे शरीर की गर्मी से पीड़ा पहुँचती है । यह एक प्रकार की विराधना

है जबकि ऊन के कटासने की ओट इन सूक्ष्म जीवों को ऐसी पीड़ा से बचा सकती है ।

कुल मिलाकर कटासना इकहरा, गरम ऊन का, सफेद और ड़ेढ़ हाथ का होना चाहिए ।

मुहपत्ति



तीसरा उपकरण है मुहपत्ति, इसका शास्त्रीय नाम है मुखानंतक ।

इसे मुखवस्त्रिका, मोंपत्ति भी कहा जाता है, कहीं मोंमबत्ती भी बोला जाता है, जो बराबर नहीं है । बहुत प्रचलित और सरल होने से मोपत्ति भी मोंबत्ती के रुप में बदल गया, परंतु शब्द को इतना भी विकृत नहीं होने देना चाहिए कि अर्थ का अनर्थ ही हो जाए ।

मध्यम शब्द है मुहपत्ति

मुह यानि मुख, पत्ति यानि पट्टी ।

मुँह के आगे रखने की पट्टी 'मुहपत्ति' कही जाती है । इसका भी निश्चित माप है, एक वेंत (बिल्लास) (हथेली पूर्णतया चौड़ी करने पर अंगूठे के सिरे से कनिष्ठा अंगुली के सिरे तक की लम्बाई) और चार अंगुल लम्बाई, चौड़ाई (समचौरस), यह बात बृहत्कल्प भाष्य में स्पष्ट बताई गई है ।

चउरंगुल विहत्थी, एयं मुहणंतमस्स उ पमाणं ।
बितीयं पि य पमाणं, मुहप्पमाणेण कायव्वं ।।

अर्थ : चार अंगुल और एक वेंत यह मुहपत्ति का प्रमाण है । दूसरा प्रमाण यह भी है कि मुख बराबर ढ़ँका जा सके (तह करने के बाद मुहपत्ति लगभग इतनी ही हो जाती है) और चारों कोरों से एक समान होना चाहिए ।

'यति दिनचर्या' में भी यही बात कही गई है । मुहपत्ति की चारों कोरों (किनारों) में से तीन कोर खुली और एक बंधी होना चाहिए यानि कि तीनों कोरों की ओर से तंतु निकालना चाहें तो निकल सके पर चौथी कोर से नहीं ।

चार कोर चार गति की प्रतीक है, नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव । इनमें आत्मा को मुक्ति दिलाने में एक ही समर्थ है मतलब कि संसार-सागर का किनारा एक ही गति दिला सकती है, वह है मनुष्य गति । मानव-जीवन ही संसार-भ्रमण

पर पूर्णविराम लगा सकता है । यह सतत् ध्यान में रहे इसके लिए मुहपत्ति की एक किनार बंधी होना चाहिए ।

मुहपत्ति का रंग भी सफेद ही होना चाहिए, दूसरा कोई भी रंग नहीं चलता । मुहपत्ति की तह (घड़ी) भी मनचाही नहीं करना है, इसकी भी अपनी विधि है ।

'आचार-दिनकर' नामक ग्रंथ की टीका में यह बात स्पष्टता से बताई गई है ।

पहले मुहपत्ति को एकदम खुली रखें । फिर कोर (किनार) वाले दोनों सिरे मिल जाएँ इस तरह मुहपत्ति को बराबर मध्य में से मोड़ दे अब मुहपत्ति दुहरी (तहवाली) और लंबचौरस बन गई । मुहपत्ति को जमीन पर अपने सामने इस प्रकार रखें कि बंधी कोरवाला हिस्सा अपनी बाँई ओर आए तथा मोड़ वाला हिस्सा भी अपनी ओर रहे । मोड़े हुए भाग से दो अंगुल जितना भाग फिर से मोड़ें ताकि मुहपत्ति का अपनी ओर का भाग चार तहवाला और ऊपरी भाग दो तहवाला रहे । बस, फिर मुहपत्ति को चारों कोर मिले इस तरह मोड़ दीजिए ताकि मुहपत्ति का आकार बराबर हो जाए । नीचे का दो अंगुल वाला भाग आठ तहवाला और ऊपरी भाग चार तहवाला हो जाएगा । मुहपत्ति का यह आकार मुँह में से निकलते श्वास-वायु आदि के प्रमाण की अपेक्षा से बराबर रहता है ।

यह व्यवस्था इसलिए है कि ऐसी मुहपत्ति मुँह के आगे रखने से ज्ञान, ज्ञानी और ज्ञान के साधनों का भी विनय होता है । हम बोलते हैं तब मुँह में से थूक भी निकलता है । कई लोगों के मुँह से तो इतना थूक निकलता है मानो फव्वारा चल रहा हो । मुहपत्ति रखने से थूक वहीं अटक जाता है और ज्ञान, ज्ञानी और ज्ञान के साधन पर थूंक गिरने से होने वाला अविनय न हो। और विनय पुष्ट होता है ।

प्रश्न : थूक रोकने के लिए मुहपत्ति की आड़ रखने का विधान है तो हमेशा के लिए मुँह पर मुहपत्ति बांध दें तो कैसा रहे ? संप्रदाय विशेष में ऐसी प्रवृत्ति मान्य है, उसका अनुसरण करें तो ? ऐसा करने से भूल से भी अविनय आशातना होने की आपत्ति भी नहीं आए ?

उत्तर : ऐसा करना अनुचित है । बछड़े को बार-बार पानी कौन पिलाएगा ? इससे तो उसे कुँए में ही उतार दें तो क्या तकलीफ ? जब प्यास लगे तब पानी

तो पी सके । जैसे उस बूढ़ी माँ का यह विचार योग्य नहीं है वैसे ही उपर्युक्त दोष दूर करने के लिए मुँह पर मुहपत्ति बाँधनी अनुचित है । ऐसा करने से 'काँटा निकालते सुई घुसी' जैसी स्थिति पैदा हो जाए ।

मुँह बांधने से मुँह की लार निरन्तर मुहपत्ति में जाती है और मुहपत्ति बंधी ही रहने से लार नहीं सूखती । इससे ४८ मिनिट बाद इसमें संमूर्च्छिम जीवों के उत्पत्ति-विनाश की हिंसक परंपरा शुरु होती है, जिसमें लाखों-करोड़ों नहीं असंख्य त्रसकाय जीवों की हिंसा होती रहती है, यह तो अनुचित ही है न ? ऐसी स्वरुप और सानुबंध हिंसा से होनेवाला विनय-पालन बराबर नहीं माना जाता । वैसे इसे तो विनय ही नहीं कहा जाता ।

और दूसरी बात, मुँह पर बाँधने से बोलने पर नियंत्रण भी नहीं रहता । मुहपत्ति मुँह के आगे रखकर बोलने के विधान का यह भी आशय है कि व्यक्ति व्यर्थ नहीं बोलता रहे । जितना काम हो उतना ही बोले बाकी मौन रहे ।

अब मुहपत्ति तो बंधी ही है न ? चाहे जब चाहे जो बोलते रहे तो क्या तकलीफ है ? मुहपत्ति के उपयोग के पीछे भाषासमिति और वचनगुप्ति के पालन का भाव भी रहा हुआ है, जो बिना बांधी मुहपत्ति के उपयोग से सिद्ध हो सकता है।

जैसे बिना मुहपत्ति के बोलना अनुचित है वैसे ही सतत मुहपत्ति बांध कर रखना भी बहुत गलत ही है । बोलते समय मुहपत्ति हाथ में रखकर मुँह के आगे रखना ही उचित और सुसंगत है । कुछ भी बोलते समय मुहपत्ति को हाथ में लेकर मुँह के आगे इस तरह रखने कि जिससे आठ तहवाला मुहपत्ति का भाग बराबर मुँह के सामने आए और चार तहवाला भाग नाक के सामने आए ।

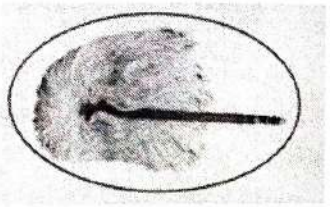
मुहपत्ति को इस प्रकार रखना कि मुहपत्ति की चारों कोर बाँई ओर ऊपर के भाग में आए । यह बात वांदणा लेते समय मुहपत्ति को चरवले पर रखने के प्रसंग में भी बराबर ध्यान रखें ।

मुहपत्ति, सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, साधुता आदि में अनिवार्य वस्तु है । शास्त्रवार्ता समुच्चयवृत्ति में स्पष्ट बताया है कि "मुहपत्ति' साधुवेश का चिह्न है यानि कि जहाँ जहाँ साधुवेश वहाँ वहाँ मुहपत्ति होती ही है । इसमें से कोई भी क्रिया करते मुहपत्ति को शरीर से अलग तो ठीक जरा भी दूर नहीं हो इसका विशेष ध्यान रखें । कदाचित् चालू क्रिया में मुहपत्ति शरीर से अलग हो जाए तो तुरंत इरियावही करें, उसके बाद ही क्रिया आगे चलाएँ । मुहपत्ति मुँह ढ़ँकने के

लिए कपड़े का छोटा टुकड़ा नहीं है परंतु जिनशासन के तत्व का प्रतीक है, इससे अत्यंत पूजनीय है । इसका जो उपयोग बताया है वही करना चाहिए । गरमी में हवा करने के लिए, पसीना पोंछने के लिए या ऐसे ही किसी काम के लिए उपयोग नहीं करना चाहिए । ऐसा करने से भयंकर आशातना का दोष लगता है ।

किसी भी क्रिया में या सूत्र बोलते मुहपत्ति को मुँह के आगे रखने की बात मात्र जीवयतना के उद्देश्य से ही नहीं की गई, सतत जागृत रहने के लिए भी की गई है । यह हमें याद दिलाती है कि हमारे सामने यह विरतिधर्म का, पूरे जिनशासन का प्रतीक है । इसकी वफादारी बराबर निभाना है । अभी हम चाहें जैसा वर्तन नहीं कर सकते करने योग्य कार्य ही हमे करना है, अन्य नहीं ।

मुहपत्ति, समस्त जिनशासन का प्रतीक कैसे है ? यह मुहपत्ति के पड़िलेहन के बोल के अध्याय में समझेंगे । इसके लिए 'मुहपत्ति के बोल, खोले कर्म की पोल' प्रकरण अवश्य पढ़ें।



चरवला

धोती, आसन, मुहपत्ति इन तीन उपकरणों का तो लगभग सभी को ख्याल होता है कि भाई ! इन तीन के बिना तो सामायिक होती ही नहीं है । पहनने को शुद्ध वस्त्र तो चाहिए ही, बैठने के लिए कटासना और पड़िलेहन के लिए मुहपत्ति भी चाहिए ही...परंतु इनके बाद चरवले की क्या जरुरत ?

चरवला तो उसे चाहिए जिसे सामायिक में खड़े होना हो, इधर-उधर जाना हो । हमें कहाँ खड़े होना है, बैठे सो बैठे, ४८ मिनिट होने के बाद ही खड़े होना है न ? कदाचित बीच में कुछ हुआ और खड़े होने का मौका आया तो पास में बैठे सज्जन से ले लेंगे और हो जाएंगे खड़े । कौन चरवले का भार उठाए और कौन सम्हाले ? क्या जरुरत ?

लोक मानस में फैली इस विचारधारा के कारण आज सामायिक और प्रतिक्रमण में से चरवला लगभग गायब ही हो गया है । पर यह ख्याल बराबर नहीं है । वास्तव में चरवला केवल खड़े होने का या घूमने फिरने का लाइसेन्स नहीं है, परंतु सामायिक का आवश्यक अंग है । इसके बिना सामायिक अपूर्ण मानी जाती है । सामायिक में आगे-पीछे होते मन के वारण (स्थिर करने) का प्रतीक है

चरवला / 'चरवला' शब्द के अर्थ से भी इसके उपयोग की जानकारी मिल सकती है ।

इस उपकरण का नाम चरवला क्यों ?

एक शब्द है 'चर-वालो' अर्थात् सामायिक में चरते यानि घूमते-फिरते वालो, पूंजो-प्रमार्जना करो । तात्पर्य यह है कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते प्रमार्जन करने में सहायक साधन 'चरवाला' । इससे ही 'चरवला' शब्द रुढ़ हुआ हो ऐसा भी हो सकता है ।

दूसरा शब्द है 'चारुवलक' । इसमें बदलाव आते-आते अपभ्रंश के रुप में 'चरवला' शब्द हमारे पास आया है ।

चारु=सुंदर, अच्छी तरह से

वलक=मोड़ने वाला

हमारी वृत्तियों को जो अच्छी तरह मोड़ता है, वह चरवला कहलाता है ।

दिवस दरम्यान लगभग हमारा समय दूसरी प्रवृत्तियों में ही गुजरता है, सांसारिक प्रवृत्तियों में ही सारा समय जाता है और ऐसा नियम है कि जैसी प्रवृत्ति (क्रिया) वैसी वृत्ति (विचार) होती है । अच्छी प्रवृत्ति तो अच्छी वृत्ति और खराब प्रवृत्ति तो खराब वृत्ति । दिनभर अशुभ प्रवृत्ति होने से वृत्ति भी अशुभ ही हो जाती है और यह वृत्ति जहाँ-तहाँ बाधक बनती है ।

सामायिक के ४८ मिनिट के छोटे-से काल में भी यह वृत्ति अवरोधक बनती है । इस अवरोध को दूर करने का कोई साधन हमारे पास नहीं हो तो सामायिक के लिए निकाला समय और सामायिक की प्रवृत्ति निरर्थक हो जाती है । अपनी वृत्ति को अच्छी तरह मोड़नेवाला साधन है चरवला ।

सामायिक में हर समय चरवला हमारे पास में और नजर के सामने रखने से हमें ख्याल रहता है कि, 'मैं सामायिक में हूँ, मुझसे सामायिक में ऐसा नहीं होता, ऐसा नहीं बोला जाता, ऐसा विचार नहीं किया जाता ।

चरवला है तो जड़, कुछ बोलता नहीं है, परंतु सामायिक का प्रतीक होने से इससे ध्यान रहता है और हमारी कुवृत्तियों पर काबू रह सकता है, जागृति रहती है ।

यदि चरवला हो ही नहीं तो ऐसा फेरबदल असंभव है ।

प्रश्न : मैं सामायिक में हूँ, ऐसा ख्याल सामायिक के वेश से नहीं आ

सकता ?

उत्तर : वास्तव में तो पूर्वकाल में हमारा वेश ही ऐसा था । सिले कपड़े पहनने का रिवाज ही नहीं था । पुरुष धोती-खेस ही पहनते । सामायिक में भी यही वेश पहना जाता पर वह वेश शुद्ध होता था । इससे उस जमाने में वेश से वृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं आता ।

अब तो शास्त्राज्ञा नहीं होने पर भी सिले कपड़ों में ही सामायिक होने लगी है । जो वेश अन्य प्रवृत्ति करते हुए पहना जाता है, वही सामायिक में पहनने से वृत्ति-परिवर्तन में वेश कामयाब नहीं होता ।

चरवला अलग ही वस्तु है, यह वृत्ति परिवर्तन करने का सफल साधन है ।

हमारे पास चरवला देखकर कोई व्यक्ति हमें सांसारिक प्रवृत्ति में नहीं ले जा सकता । चरवला देखकर ही ख्याल आ जाता है कि यह पुण्यात्मा सामायिक में है । चरवला रखने से दूसरों की दखलंदाजी का भय भी चला जाता है ।

वृत्ति के साथ प्रवृत्ति में भी परिवर्तन लाने का काम चरवला करता है । सामायिक के सिवाय के समय में कोई वस्तु लेने, रखने, उठने, बैठने आदि का काम ऐसे ही होता है, जबकि सामायिक में ऐसा नहीं होता । सामायिक में पूंजना-प्रमार्जना आवश्यक होता है । कोई वस्तु लेना हो, रखना हो, शारीरिक स्थिति में फेरबदल करना हो, कभी बाँया तो कभी दाँया घुटना ऊँचा करना पड़े, कायोत्सर्ग करने के लिए खड़ा होना पड़े, कभी खड़े हुए को बैठना पड़े, तब चरवले से ही प्रमार्जन करना शक्य होता है ।

सामायिक लेने पालने की क्रिया में सभी चेष्टाएँ आती है । सामायिक कटासने पर आराम से बैठे बैठे नहीं लेना है, वरन खड़े होकर खमासमण आदि देते ही लेना है । एक-एक खमासमणा देते सत्रह जगह पर प्रमार्जना करना होती है, (यह प्रमार्जना का विषय आगे देखेंगे) अब यदि चरवला ही नहीं है तो यह सब कैसे संभव है ?

सामायिक लेने के बाद तो एक ही आसन पर स्थित रहना है, फिर भी किसी अनिवार्य कारण से इधर-उधर होना पड़े या कोई वस्तु लेने-रखने का मौका आए अथवा वाचना-पाठ आदि लेने के लिए पू.गुरुदेव को वन्दन करने का अवसर आय तो हर बार चरवले से प्रमार्जन करना है । मुहपत्ति प्रतिलेखन करते समय भी चरवला अत्यन्त जरुरी है, क्योंकि बिना चरवले के मुहपत्ति पड़िलेहन करने में कमी रह जाती है । मुहपत्ति का पड़िलेहन करते समय पचास बोल

बोलने की मर्यादा है, जिसमें अंतिम छह बोल द्वारा पैर का प्रमार्जन चरवले से ही करना होता है । यदि हमारे पास चरवला ही न हो तो यह प्रमार्जन कैसे हो ? यदि प्रमार्जन न हो या बिना चरवले से हो तो अविधिदोष सिर पर चढ़ ही जाए । ऐसा नहीं होने देने के लिए चरवला आवश्यक है ।

इस प्रकार वृत्ति और प्रवृत्ति को अच्छी तरह मोड़ने का काम चरवले से ही सिद्ध होने से और विशेष तो अपने परम हितस्वी करुणालु भगवंतों द्वारा बताया होने से सामायिक लेते समय चरवला होना ही चाहिए ।

साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि चरवले का उपयोग विशेष रुप से प्रमार्जना के लिए और गोद में रखने के लिए बताया है । चरवला मख्खी, मच्छर उड़ाने का साधन नहीं है । हाँ, मच्छर, मख्खी या अन्य जीव जंतु शरीर पर चढ़े हों और उनकी विराधना न हो इस हेतु से दूर करने के लिए चरवले का सावधानी और कोमलता से जरुर उपयोग हो सकता है । यह भी एक तरह की प्रमार्जना ही है । खुजालने में या किसी को मारने आदि में चरवले का उपयोग बिल्कुल नहीं होता है ।

चरवला धार्मिक उपकरण है और मारना आदि सांसारिक प्रवृत्ति है । धार्मिक उपकरण का सांसारिक प्रवृत्ति में उपयोग करने से उपकरण, अधिकरण बन जाता है ।

उपकरण तारक है,

अधिकरण मारक है ।

चरवला विधि अनुसार हाथ में, बगल में गोद में रखा जाना चाहिए, परंतु कंधे पर गदा की तरह नहीं रखना चाहिए, इससे उपकरण की अवहेलना होती है, जो अनुचित है ।

चरवला कैसा होना चाहिए, इसका भी विधान है । चरवला ३२ अंगुल का होना चाहिए । इसके माप के लिए 'पंचवस्तु' ग्रंथ की ८१४ वीं गाथा में पूज्यपाद श्री हरिभद्रसूरि म. ने बताया है–

बत्तीसंगुल-दीहं, चउवीस अंगुलाइ दंड़स्स ।

सेसदसा पड़िप्पुन्नं, रयहरण होई माणेण ।।

चौवीस अंगुल की दांड़ी (ड़ंड़ी) और आठ अंगुल की दशियाँ (फलियाँ) रहे । चरवले के माप के पीछे यह रहस्य है कि आत्मा २४ दंड़क (मार्ग) से दंड़ पाता है । इसे दूर करने के लिए ड़ंड़ी चौवीस अंगुल की आठ प्रकार के कर्मबंधन

से बंधी आत्मा को मुक्त करने के लिए आठ अंगुल की दशियाँ बताई है ।

प्रश्न : इस गाथा में तो रजोहरण यानि ओघे का नाप बताया है, आपने इसे चरवले के माप में कैसे जोड़ा ?

उत्तर : इसलिए कि चरवला साधु भगवंतों के रजोहरण का नमूना ही है। साधु ओघा रखते हैं तो श्रावक चरवला रखते हैं । इसके लिए सेन प्रश्न में स्पष्टता की गई है कि **'श्राद्धानाञ्च रजोहरणं चरवलक एव इति'** यानि श्रावकों का रजोहरण चरवला ही है । आज यह माप नष्टप्रायः होता दिखाई दे रहा है । 'मिनी' लहर धर्मक्षेत्र में भी प्रवेश कर चुकी है जिसकी लपेट में आकर धार्मिक उपकरण भी 'मिनी' होते चले जा रहे हैं । पूजा-पेटी छोटी हो गई, मुहपत्ति छोटी हो गई, चरवले का आकार भी घट गया । पालीताणा, अहमदाबाद, सुरत में ऐसे छोटे-छोटे चरवले तैयार मिलते हैं, जो सस्ते भी होते हैं । छोटे होने से सुविधा जनक भी हो गए हैं लेकिन याद रखना चाहिए कि जो आराधना वीतराग परमात्मा ने बताई है, उसके उपकरण भी उनके बताए अनुसार ही होना चाहिए, तभी तो आराधना भी अपना प्रभाव बता सकती है ।

चरवला मापसर हो तो प्रमार्जन-क्रिया भी बराबर हो सकती है । छोटा चरवला इसमें अनुपयुक्त रहता है, इससे चरवले के ज्ञानी निर्दिष्ट माप का ध्यान रखना जरुरी है । अब चरवले की ड़ण्ड़ी प्लास्टिक, चांदी, एल्युमिनियम, स्टील आदि की मिलने लगी है और हमारे सुज्ञ बंधु (?) उनका उपयोग भी करने लगे हैं ।

दिखने में अच्छा है, मजबूत है टिकाऊ है इसलिए उपयोग करें यह पर्याप्त नहीं है । हर वस्तु के अलग अलग गुणधर्म होते हैं । जिस वस्तु का जहाँ उपयोग होता हो, वहीं करना उचित है ।

वस्तु का मनचाहे ढ़ंग से उपयोग किसी दिन मृत्यु से मुलाकात भी करवा सकता है । विद्युत संबंधी काम करनेवालों के हाथ में रहे ड़िसमिस या पेचकस का हत्था प्लास्टिक का ही होता है । इसके बदले अगर तांबे, पीतल या स्टील का हो तो मौत के गले ही लगना पड़े । वहाँ पर प्लास्टिक यानि प्लास्टिक ही, दूसरे किसी विचार को स्थान ही नहीं मिलता । प्लास्टिक विद्युत-प्रतिरोधक है, जिससे करंट लगने का भय नहीं रहता । ऐसे ही चरवले की ड़ंड़ी भी लकड़ी की ही होना चाहिए, प्लास्टिक, स्टील या एल्युमिनियम की नहीं ।

सामायिक करने के लिए जैसे मुहपत्ति, कटासना आवश्यक है वैसे ही

चरवला जरुरी है । जैसे पू. साधु भगवंतों के पास रजोहरण होता ही है । वैसे सामायिक, प्रतिक्रमण या पौषध में श्रावक के पास चरवला होता ही है । उसे शरीर से जरा भी अलग नहीं रखना चाहिए । चालू क्रिया में चरवला शरीर से जरा भी अलग हो जाए तो क्रिया रोककर इरियावही कर लेना चाहिए, तभी क्रिया अखंड़ित रहती है, वरना खंड़ित मानी जाती है ।

प्रश्न : बहनों के लिए चरवले की ड़ंड़ी चौरस (चौकोर) और पुरुषों के लिए गोल ऐसा फर्क क्यों ?

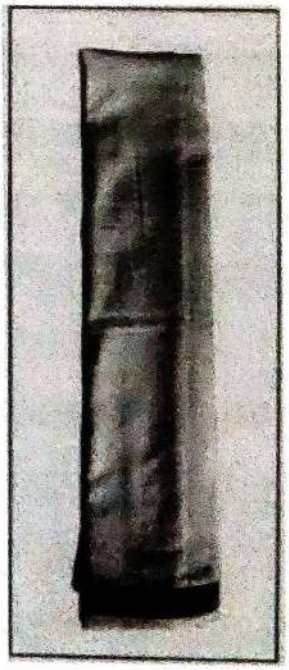
उत्तर : पंड़ित मूर्धन्य श्री छबीलदासभाई को गीतार्थ मूर्धन्य पूज्य आचार्य विजय उदयसूरीश्वरजी म.सा. ने इस प्रश्न का उत्तर स्त्री चार गति का कारण है, यह बताया था ।

प्रश्न : क्या स्त्रियाँ ही चार गति का कारण है, पुरुष नहीं ?

उत्तर : हैं, पर यहाँ स्त्री से स्त्री-शरीर नहीं वासना समझना चाहिए ।

प्रश्न : क्या पुरुषों में वासना नहीं होती ?

उत्तर : होती है परंतु वासना का प्रतीक स्त्री है और वासना की अधिकता भी स्त्री में ही होती है । इस बात का ध्यान रखने के लिए स्त्रियों के लिए ड़ंड़ी चौकोर बताई है, जो उचित भी है । सामायिक के चार उपकरणों की आवश्यकता को समझा, अब पाँचवे उपकरण खेस का महत्त्व भी समझते हैं ।



उत्तरासंग (खेस)

सामायिक लेनी है तो धोती पहन ली, इतना ही बस नहीं है, उत्तरासंग (खेस) भी चाहिए ही ।

वास्तव में, उत्तरासंग तो श्रावक की यूनिफॉर्म ही है । श्रावक है तो कंधे पर खेस होगा ही, यह उसकी पहचान है ।

श्रावक के कपाल (ललाट) पर चंदन का तिलक देखकर उसे आगे से तो पहचाना जा सकता है, परंतु पीछे से कैसे पहचाना जाए कि यह श्रावक है ? खेस से पीछे से भी श्रावक को पहचाना जा सकता है ।

हजारों वर्ष पहले खोदी गई अजंता एलोरा की गुफाओं में अन्य प्रतिकृतियों के साथ श्रावक की प्रतिकृतियाँ भी खुदी हैं, जिनमें श्रावक के कंधे पर खेस दिखाया गया है । और होगा क्यों नहीं ? यह तो श्रावक की यूनिफॉर्म है ।

स्कूल-कॉलेज में आज भी यूनिफॉर्म सम्हाल रखी है, वहाँ तो 'आर्ड़र एण्ड़ ओबे' वाली बात है, परंतु धर्मक्षेत्र में वेश-मर्यादा की व्यवस्था ही नष्ट हो गई, नहीं तो वेश की कितनी महत्ता बताई है ।

आपने कभी किसी टॉकीज, क्लब या जिमखाना में किसी जैन साधु को देखा है ? नहीं क्योंकि वेश ही उन्हें रोके रखता है । यदि साधु-भगवंतों ने भी वेश-मर्यादा तोड़ दी होती और पेंट-शर्ट पहनना शुरु कर दिया होता तो ? 'महत्व की वस्तु तो हृदय के भाव हैं, वेश से क्या लेना-देना ? ऐसा विचार कर यदि साधु-भगवंत वेश विसर्जित कर दें तो जिनशासन की दशा कैसी हो जाए । भले आज इस वेश को २५३३ वर्ष हो गए पर यह यथावत् है इससे ही साधु आचारनिष्ठ हैं और इससे ही जिनशासन की इमारत सही सलामत है, वरना कभी की जमींदोज हो चुकी होती ।

हम दूसरे धर्म और दर्शन की हालत देखते ही हैं, इसका महत्वपूर्ण कारण है वेश मर्यादा की ओर उपेक्षा भाव ।

हमारे यहाँ भी श्रावक-वर्ग में वेश की बहुत उपेक्षा हो रही है । फिर भी इतना तो ध्यान रखना ही चाहिए कि भले संसार-व्यवहार में कुछ भी करें पर सामायिक-पूजनादि-आराधना में वेशभूषा यथोचित ही होना चाहिए । 'खेस' यह वास्तविक नाम नहीं है, वास्तविक नाम है उत्तरासंग । उत्तर यानि नाभि के ऊपर का शरीर और आसंग यानि रहा हुआ । नाभि के ऊपर के शरीर पर रहे हुए वस्त्र को उत्तरासंग कहा जाता है ।

खेस ओढ़ने की भी अपनी विधि है । उत्तरासंग के सिरे पर जो छूंछेवाला भाग है उसे इकट्ठा कर लें ताकि खेस लंबा हो जाए । अब एक बाजू के सिरे को नाभि पर लटकता रखकर ठेठ ऊपर बाँए कंधे पर ले जाएँ । वहाँ से उसे पीछे से दाँए कंधे के नीचे की बगल में से लेकर आगे लाएँ और छाती से होकर बाँए कंधे से पीछे जाने दें । यानि एक सिरा आगे नाभि पर लटके और दूसरा पीछे कमर पर लटके ।

यह खेस ओढ़ने की शास्त्रीय मर्यादा है ।

इस मर्यादा के पीछे भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण है । ऊपरी अंगों से उत्तरासंग का संपर्क यौगिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत लाभदायी है, ऐसा सुनने और जानने को मिला है ।

खेस रखना, विनय की अभिव्यक्ति का माध्यम है । पूर्वकाल में दीपावली

पर्व में मुहूर्त्त देखकर चोपड़े लेने जाते तब सिर पर टोपी और कंधे पर खेस होता ही था । बहुमानपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर चोपड़े लेते । आज भी यह परंपरा कहीं कहीं देखने को मिलती है ।

चोपड़ा लक्ष्मीदेवी का आसन है, इससे लक्ष्मीदेवी की तरह इसका भी बहुमान होता है और विनय दर्शाने के लिए खेस का उपयोग होता । ऐसे ही परमात्मा के दर्शन-पूजन करते और पूज्य गुरुदेवश्री के वंदन करते खेस अवश्य होना चाहिए क्योंकि दोनों बहुमान योग्य तत्व हैं, उनका विनय करने के लिए खेस आवश्यक है ।

और तो सब ठीक पर देवलोक वासी, बत्तीस लाख विमानों के स्वामी इन्द्र महाराज भी सदा खेस रखते ही हैं । एक बार श्री गौतम स्वामी ने प्रभु वीर से पूछा, 'भगवंत ! इन्द्र महाराजा के वचन सावद्य (पाप-वचन) होते है या निरवद्य होते है (निष्पाप वचन) ?'' प्रभु ने कहा, ''गौतम यदि इन्द्र मुँह के आगे खेस रखकर बोले तो निरवद्य अन्यथा सावद्य ।''

इन्द्र भी खेस का बराबर उपयोग रखते हैं । कई लोग खेस को खुला करके इस तरह ओढ़ते हैं जिससे सीना और कंधे ढ़ंक जाए, पर ऐसे नहीं ओढ़ना चाहिए ।

लोगों से पूछा जाए, ''ऐसा क्यों ओढ़ते हो ?'' जवाब मिलता है, ''शरीर खुला होने से शर्म आती है ?'' शर्म की बात यहाँ अयुक्त लगती है । जहाँ शरम आना चाहिए, वहाँ नहीं आती और जहाँ नहीं आना चाहिए, वहाँ आती है । पुरुषों को छाती खुली रखने में कैसी शरम ?

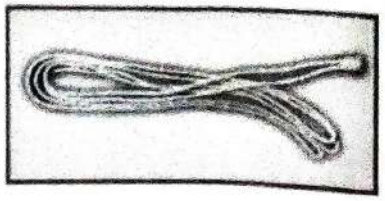
पूर्वकाल में तो पुरुष एक विशेष अधोवस्त्र ही वापरते थे, ऊपर का भाग तो खुला ही रहता था । आज इसका शीर्षासन हो गया है । अब छाती खुली रखने में शर्म आती हैं, इसके लिए बनियान का उपयोग रखते हैं और नीचे का अधिकांश भाग खुला रहता है । पैर खुले रखते उन्हें शर्म नहीं आती । बरमूड़ा या निकर पहनकर भाई साहब सुबह सुबह मॉर्निंग वॉक पर निकल पड़ते हैं । गजब है न ? आवरण तो अधोअंग पर होना चाहिए या ऊपर ? लेकिन

फैशन जिसका नाम, बड़ा विचित्र उसका काम।

होगा...हम तो सामायिक की बात करते हैं ।

सामायिक में खेस रखना जरुरी है और उसे ड़ालने की विधि भी बताए अनुसार ही करना चाहिए ।

कंदोरा



पाँच उपकरण तो दिमाग में जँच गए, पर छठे उपकरण का नाम सुनकर तो कितनों को आश्चर्य होगा ओह ! कंदोरा ! सामायिक में कंदोरे का क्या काम ! एकदम नई बात ।

कंदोरे में भी कई रहस्य समाए हुए हैं । आइए, हम जानें ।

कंदोरा भी जिनशासन का प्रतीक है ।

जिनशासन की प्रत्येक क्रिया में कंदोरा बांधना आवश्यक है ।

आज तो कंदोरा पौषध तक ही सीमित रह गया है । बाकी सब स्थान से उसे दूर कर दिया गया है । सामायिक में भी कंदोरा बांधना जरुरी है क्योंकि इससे आत्मा में खुमारी पैदा होती है ।

कंदोरा कमरपट्टे का प्रतीक है । कमरपट्टे को 'कछोला' भी कहा जाता है । जब कोई योद्धा समरांगण भूमि में युद्ध के लिए जाता तब कछोला बांधकर जाता । आज भी पुलिसमेन और मिलेट्रीमेन अपनी पोषाख के साथ चौड़ा और भारी पट्टा बांधते ही हैं । यह कछोले के स्थान पर आया है । कछोला बांधने से कमर सीधी और कड़क रहती है । इससे जोशपूर्वक लड़ा जा सकता है और थकान भी नहीं लगती ।

लंबी खेप खींचनेवाले भी इस तरह कछोला बांधते हैं । साधु भगवंत भी जब विहार करते हैं, तब कमर बांधकर विहार करते हैं, इससे थकान कम लगती है । वैद्यक ग्रंथ में बताया है-

'ये गुणाः वाहने प्रोक्ता, ते गुणाः कटिबद्धने'

'वाहन में बैठकर सफर करने से जैसे थकान नहीं लगती वैसे कमर बांधकर चलने से भी थकान नहीं लगती ।' संक्षेप में युद्ध लंबी खेप या विहार की बात आती है वहाँ कमर कसने की भी बात आती है । ये प्रवृत्तियाँ पराक्रम वाली हैं, इनको करते समय कमर कसने से जोश रहता है जिससे क्रिया में शिथिलता नहीं आने पाती ।

व्यवहार में भी कहा जाता है, 'भाई ! यह तो पराक्रमभरा काम है, ज्यों-त्यों नहीं होगा इसके लिए कमर कसना होगी । कटिबद्ध होना पडेगा ।'

जिनशासन की प्रत्येक क्रिया, पराक्रम-साध्य है । क्रिया, केवल क्रिया

नहीं है, कर्मराजा के सामने युद्ध की प्रक्रिया है । इसमें शिथिलता, मंदता नहीं चलती । अनादिकाल से आत्मा के प्रदेश-प्रदेश पर कर्म राजा की सल्तनत कायम है । इस सल्तनत को शिकस्त देने के लिए इसकी सत्ता की जड़ें उखेड़ने के लिए ही परमात्मा ने विविध क्रियामार्ग बताए हैं । ये क्रियाएँ अत्यन्त प्रभावशाली और ज्वलंत हैं । ये क्रियाएँ करते समय हम में बराबर जोर बना रहे, इसके लिए कंदोरा बांधने की विधि बताई है ।

कंदोरा बांधते समय यह भाव लाना है कि, मैं कोई सामान्य क्रिया करने के लिए तैयार नहीं हुआ हूँ, महत्वपूर्ण क्रिया करने के लिए तैयार हुआ हूँ, एक बहादुर योद्धा की तरह सतत जागृति और पराक्रम का रक्षण करना है । शिथिलता, प्रमाद न आ जाए, इससे मुझे सावधानी बरतनी है, इसके लिए ही मैं कंदोरा बांध रहा हूँ ।

यह कंदोरा, चांदी, सोना या अन्य धातु का नहीं, रेशम का भी नहीं, सूत का ही होना चाहिए । यह बात हमने अच्छी तरह जान ली है कि हर पदार्थ की अपनी-अपनी विशेष महत्ता है । यहाँ सूत के कंदोरे की बात इसलिए की गई है कि इस सूतीपन से अपना मूलाधार चक्र सक्रिय बनता है ।

कमर पर कंदोरा बांधने से पीछे मेरुदंड़ के नीचे का भाग और नाभि के मध्य भाग से जुड़ाव होता है, इससे मूलाधार-चक्र गतिमान होता है ।

अलग-अलग पावर पर दो तार लगाने से जैसे बल्ब प्रकाशित होता है, वैसे ही सूती कंदोरे के प्रभाव से अपने मेरुदंड़ के नीचे के भाग में मूलाधार चक्र है, वह चालू होता है । मूलाधार चक्र का स्थान पूरे शरीर का केंद्र स्थान है और हममें सोई हुई चेतना शक्ति का मूलस्त्रोत्र भी यही है । इसका ऊर्ध्वीकरण होने से हममें पॉवर, जोश, जोर उत्पन्न होता है ।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कंदोरा बांधने से वीर्यरक्षा होती है । ब्रह्मचर्य पालन में वीर्यरक्षा बहुत जरुरी है, इसमें सूती कंदोरा प्रभावशील है ।

जैनेतर हिन्दू ग्रंथ में पढ़ने को मिला कि किसी व्यक्ति को वासना-विकार बहुत परेशान करते हों तो उसे कंदोरा बांधना चाहिए । जैन-दीक्षा अंगीकार करने वाले व्यक्ति को दीक्षा-दिन से ही सदा के लिए कंदोरा बांधा जाता है । कंदोरे के बिना कोई भी क्रिया नहीं होती । अन्य कारणों के साथ कंदोरा बांधने का महत्त्वपूर्ण कारण ब्रह्मचर्य पालन में सहयोग है ।

इन सभी कारणों से कंदोरा किसी धातु या रेशमादि का नहीं पर सूत का ही होना चाहिए । वह भी ऐसा नहीं कि बाजार से ड़ोरी ले आए, चाहिए उतनी ले ली और बांध ली । ड़ोरी के दोनों सिरों पर विशेष रीति से लगी हुई दो-दो गाँठ होना चाहिए । इसके लिए साधु भगवंत का कंदोरा देखा जा सकता है ।

ये दोनों गाँठे हमें बताती हैं कि जिनशासन की प्रवृत्ति करते समय मन को ज्ञान और क्रिया में बांध कर रखना है ।

पूर्वकाल में कंदोरा बांधने की प्रथा बहुत प्रचलित थी । ऊंझा चाणस्मा तथा अन्य आदि गाँवों के श्रावकों के जीवन में यह प्रथा कुछ वर्ष पहले तक प्रचलित थी, ऐसा वहाँ के बुजुर्गो का कहना है । सुरत शहर में आज भी ऐसे बुजुर्ग है जो बचपन से इस प्रकार कंदोरा बांधते चले आ रहे है ।

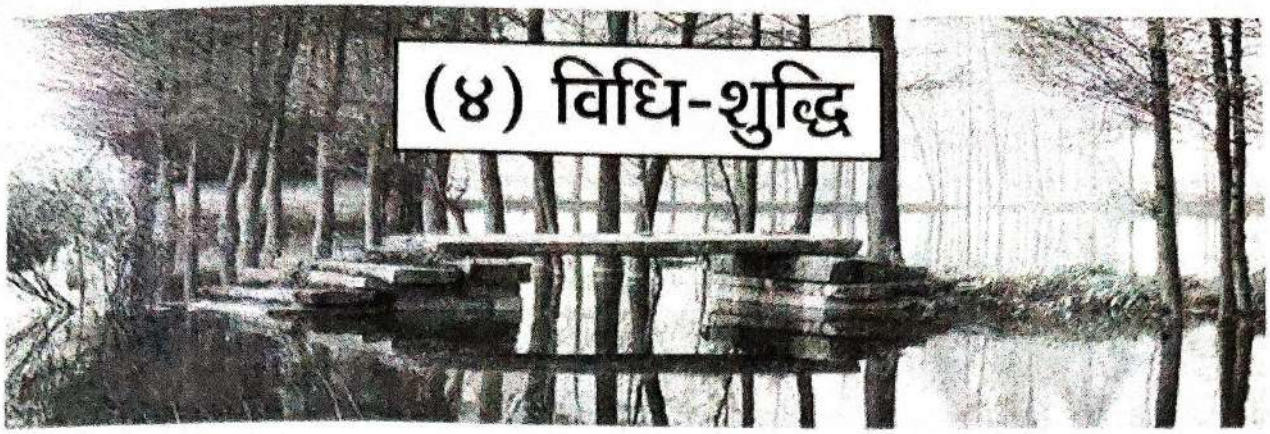
कुछ लोग यह समझते हैं कि धोती सरक न जाए इसलिए कंदोरा बांधने का विधान है, पर ऐसी स्थूल बात का यहाँ कोई महत्त्व नहीं है । शायद ऐसी ही किसी मान्यता के कारण कंदोरा केवल पौषध में ही रह गया है । क्योंकि उसमें १२ घंटे या २४ घंटे धोती पहनना होती है इसलिए वहाँ जरुरी है पर सामायिक, प्रतिक्रमण, जाप, पूजा में कंदोरे की क्या जरुरत ?

बस, इस मान्यता की गाड़ी चल पड़ी और कंदोरे की परंपरा टूट गई । इतनी जानकारी को ध्यान में लेकर जब सामायिक करने बैठेंगे तब शुद्धवस्त्र, कटासना, मुहपत्ति, चरवला और खेस तो लेंगे ही साथ में छट्ठे उपकरण के तौर पर कंदोरा नहीं भूलेंगे । इसके अलावा सामायिक में आवश्यक पुस्तक, नवकारवाली आदि भी लेकर ही बैठें । यह नहीं सोचें कि चरवला तो है ही, जरुरत होगी तो खड़े होकर ले लेंगे । अत्यंत महत्त्वपूर्ण कारण बिना सामायिक में खड़े नहीं हुआ जाता ।

इनमें से एक भी उपकरण कम नहीं होना चाहिए । चार पायेवाले खाट में एक भी पाया नहीं हो तो खाट पर ठीक से नहीं बैठा जा सकता । संपूर्ण उपकरण हो तो ही क्रिया का उचित फल प्राप्त हो सकता है, अन्यथा फल में हीनता आती ही है ।

इस तरह सामायिक करने की तीन शुद्धि में से दो शुद्धि समझ ली, वातावरण शुद्धि और उपकरण शुद्धि अब तीसरी शुद्धि समझते हैं ।





(४) विधि-शुद्धि

तीसरी है, विधि शुद्धि ।

विधि भी बहुत जरुरी है न ?

चाहे जितनी अच्छी और कीमती वस्तु हो परंतु उसका उपयोग करने की विधि बराबर नहीं हो तो उपयोग में सार्थकता नहीं आती ।

हर क्रिया में चाहे तो व्यवहार की हो या धर्म की, व्यापार की, रसोई की या जाने आने की विधि का आदर तो होना ही चाहिए ।

भोजन बनाने की सामग्री अच्छी से अच्छी हो पर जैसे-तैसे भोजन बनाने से भोजन स्वादिष्ट और व्यवस्थित नहीं बन पाता । भोजन बनाने की भी एक विधि है । पहले क्या लेना, फिर क्या ड़ालना, कितनी देर चूल्हे पर चढ़ाना, कब, क्या, कैसे करना ? इन सब बातों की जानकारी जरुरी है । भोजन करने की भी विधि है । दाल के साथ चावल का मिश्रण होता है, दाल के साथ दूधपाक का भोजन नहीं जीमा जाता । पेट में सब एक ही होना है न ? यह सोचकर दाल के साथ दूधपाक मिलाकर वापरने वाला लाभ के बदले नुकसान का ही भागी होता है । किस वस्तु के साथ क्या और किस क्रम से लेना, इसकी भी एक व्यवस्था है, ऐसे ही धार्मिक-क्रियाओं की भी व्यवस्था है जिसके अनुसार क्रिया करने पर समुचित फल प्राप्त होता है ।

सामायिक करने के लिए सर्वप्रथम उपकरण एकत्रित कर उनका व्यवस्थित उपयोग कर सामायिक करने के लिए तैयार हों । अब सामायिक की विधि शुरु करने से पहले मन में सामायिक के प्रति आदर भाव और अहोभाव पैदा करें ।

ओहो ! धन्य है, मुझे जन्मते ही ऊँचे में ऊँचे जिनशासन की प्राप्ति हुई और आराधना के संयोग भी उपलब्ध हुए । मैं जिस सामायिक करने के लिए तैयार

हुआ हूँ, वह कितना बड़ा अनुष्ठान है । कैसी महामांगलिक क्रिया है ।

हाथ जोड़कर आँखे बंदकर कुछ पल चिंतन करें ।

स्वयं परमात्मा प्रभुवीर ने इस अनुष्ठान के कितने गुणगान किए हैं । केवल एक ही सामायिक का कितना लाभ सर्वज्ञ भगवंतों ने बताया है । सौ वर्ष तक नरक में रही हुई आत्मा जालिम दु:ख वेदना और यातना भोगकर जो कर्म खपाती है, इतने ढ़ेर सारे कर्मों का चूरा करने की ताकत केवल एक सामायिक में रही हुई है ।

ऐसी सामायिक करने का सौभाग्य हर किसी को नहीं मिलता । शास्त्रकारों के वचन तो कहते हैं कि जिस आत्मा ने मोहनीय कर्म की ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की स्थिति में से ६९ सागरोपम कोड़कोड़ी से भी अधिक स्थिति नष्ट कर दी हो, वही सामायिक का ''करेमि भंते'' उच्चरण कर सकता है या सुन सकता है ।

इस तथ्य से मेरी आत्मा की उत्तमता का ख्याल आता है कि मैंने भी कितना पुरुषार्थ किया है, तब जाकर मुझे सामायिक करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ है ।

इस एक ही सामायिक के बल पर महाराजा चंद्रावतंस ने अपनी आत्मा का कल्याण कर लिया । परमात्मा ने जब महाराजा श्रेणिक को बताया कि, ''तुम आगामी भव में नरक में जानेवाले हो ।' तब श्रेणिक महाराजा ने उससे बचने का और नारकी में नहीं जाना पड़े इसका विकल्प प्रभु से पूछा । प्रभु ने दूसरे तीन विकल्पों के साथ यह भी एक विकल्प यह बताया कि पुणिया श्रावक की एक ही सामायिक का लाभ प्राप्त कर लो । महाराजा श्रेणिक पहुँच गए पुणिया श्रावक के यहाँ और सामायिक का लाभ देने के लिए समझाया, लालच दी । एक सामायिक के बदले लाखों, करोड़ों सोनामोहर देने की बात कही । अंत में संपूर्ण मगध देश का साम्राज्य पुणिया श्रावक के चरणों में रखने की तैयारी बताई, फिर भी पुणिया श्रावक ने स्वीकार नहीं किया ।

एक सामायिक के लिए दोनों पुण्यात्मा विराट साम्राज्य को ठोकर लगा रहे हैं, उस सामायिक की कितनी कीमत होगी ?

एक सामायिक करो और थोक में पुण्य कमाओ । जानते हैं कितना पुण्य मिलता है-शास्त्रों में बताया गया है कि बाणवे करोड़ उनसाठ लाख पच्चीस हजार नौ सौ पच्चीस पल्योपम (९२, ५९, २५, ९२५) के विराट काल तक देवता जिस पुण्य के माध्यम से दैवी भोगों को भोगते हैं और खत्म नहीं होते इतना पुण्य मात्र एक सामायिक से मिलता है । सामायिक की प्रशंसा करते हुए शास्त्रों में कहा गया है–

दिवसे दिवसे लक्खं, देह सुवव्वस्स खंड़ियो एगो ।
एगो पुण सामाइयं, करेइ न पहुप्पए तस्स ।।

अर्थ : एक मनुष्य रोज एक लाख खांड़ी (यानि आज के ४,९३,४०,००० रुपये) सोने का दान दे और एक मनुष्य विधि सहित सामायिक करे तो सामायिक करने वाला दान देने वाले से चढ़ जाता है । अरे ! इस सामायिक के लिए वो देवता हैं न कितना तड़पते हैं ? उनकी मनोभावना होती है ।

सामाइय सामग्गिं, देवा चिंतंति हिययमज्झंमि ।
जह होइ मुहुत्तमेगं, ता अम्ह देवत्तणं सुलहं ।।

यदि एक मुहूर्त्त यानि दो घड़ी के लिए सामायिक की सामग्री / संयोग मिल जाए तो वास्तव में असंख्य वर्षों का यह देव-अवतार सफल हो जाए ।

किंतु अविरति के तीव्रातितीव्र कर्मोदय के कारण देवता एक सामायिक भी नहीं कर सकते और मेरे जैसी आत्मा को सामायिक करने का अवसर मिला है, मेरा कैसा परम सौभाग्य ? और कहीं नहीं मिले ऐसा सामायिक करने का मुझे सौभाग्य मिला है, धन्य अहोभाग्य मेरे...धन्य है मेरा आज का दिन, धन्य मेरी घड़ी ।

ऐसी सामायिक करने में मुझे जरा भी प्रमाद नहीं करना चाहिए । मैं बराबर विधिपूर्वक और शुद्धि पूर्वक सामायिक करुं । इन अड़तालीस मिनिटों में एक भी दोष का सेवन नहीं करुंगा / करुंगी । इतना संकल्प करने के बाद यथोक्त विधि से उपकरणों का उपयोग करके सामायिक शुरु करें । सामायिक लेने के पहले गुरुवंदन अवश्य करें । वंदन, विनय का प्रतीक है । वंदन से गुरु महाराज के प्रति

विनय व्यक्त होता है और विनय धर्म का मूल है । 'ललित-विस्तरा' ग्रंथ में पूज्य चरण हरिभद्रसूरि भगवंत ने कहा है कि, **धर्म प्रति मूलभूता वंदना**-यानि वंदन स्वरुप विनय जहाँ होता है वहाँ ही धर्म रह सकता है, इससे सामायिक करते समय पहले गुरुवंदन अवश्य करना चाहिए ।



(१) स्थापना करने की मुद्रा

यदि सामने स्थापनाजी (ठवणी पर पाँच चंदनक युक्त पोटलीवाले) हों तो वहाँ स्थापना करने की कोई जरुरत नहीं । यदि नवकार-पंचिंदिय सूत्र वाली पुस्तक के सामने सामायिक करना हो तो पुस्तक के सामने अपने दाँई हथेली की पीठ अपनी ओर रहे और हथेली का ऊपरी हिस्सा स्थापनाजी की ओर थोड़ा झुकाकर रखें, इसे सर्पमुद्रा कहा जाता है । सर्प कुछ ऊँचा होकर फन फैलाकर फुत्कार करता हो. लगभग ऐसी स्थिति हथेली की होना चाहिए ।

ऐसा कहा जाता है कि अपने शरीर में विद्युत-प्रवाह हाथ द्वारा प्रवाहित होता है, इससे ही हथेली की

अंगुलियों के पोरों (अग्रभाग) में अधिक संवेदनशीलता होती है । शरीर के दूसरे अंगों की अपेक्षा हथेली ज्यादा सुकोमल होती है । सर्पमुद्रा द्वारा अपने सामने रखी पुस्तक की ओर विद्युत को श्री नवकार और पंचिंदिय स्वरुप मंत्राक्षरों द्वारा प्रवाहित कर उसे पुस्तक में स्थापित की जाती है, इससे पुस्तक साक्षात् गुरु महाराज स्वरुप बन जाती है । सामायिक दरम्यान स्थापनाचार्यजी की मर्यादा बनाए रखना है ।



स्थापना करते समय श्री नवकार-महामंत्र द्वारा मंगल किया जाता है और पंचिंदिय-सूत्र द्वारा गुरुतत्व के विशिष्ट गुणों के स्मरण द्वारा दाएँ हाथ से स्थापना में आरोपण किया जाता है । गुरु-गुण के आरोपण से स्थापनाजी स्वयं गुरुतत्व तुल्य साक्षात् और चैतन्यवान बन जाते हैं ।

स्थापनाजी जरा भी हिले-डुले नहीं इसका पूरा ध्यान रखना चाहिए । हिलाने से स्थापित शक्ति बिखर जाती है । यह बहुत विशिष्ट बात है । कहीं-कहीं ऐसी भी बात आती है कि मिट्टी का पुतला बनाकर उसमें मंत्र द्वारा व्यक्ति विशेष की स्थापना के माध्यम से अच्छे बुरे कार्य करवाए जाते हैं ।

यहाँ भी मंत्राक्षरों द्वारा गुरुतत्व की स्थापना होती है इससे गुरु भगवंत जैसा ही व्यवहार करना चाहिए ।

स्थापना करने के बाद, **''इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए मत्थएण वंदामि''** बोलकर खमासमणा दे ।



इस प्रकार खड़े रहे

'खमासमणा' रुढ़ि प्रयोग नाम है, शास्त्रीय नाम है, पंचांग प्रणिपात सूत्र।' पंचांग का मतलब है पाँच-अंग=दो हाथ, दो घुटने और एक मस्तक । इन पांचों को जमीन पर टिका देने का नाम हैं-पंचांग प्रणिपात । खड़े होने के बाद जमीन पर पैर की अंगुलियों और घुटनों पर रखने के बाद जमीन पर घुटनों के आगे दोनों हाथ जुड़े हुए रखें और उनके आगे जमीन पर मस्तक रखें यानि दोनों घुटने, दोनों हाथ और एक मस्तक । ये पाँचों अंग

धरती पर इकट्ठे हों, इसका शास्त्रीय नाम है पंचांग-प्रणिपात इसे ही हम खमासमणा कहते हैं।

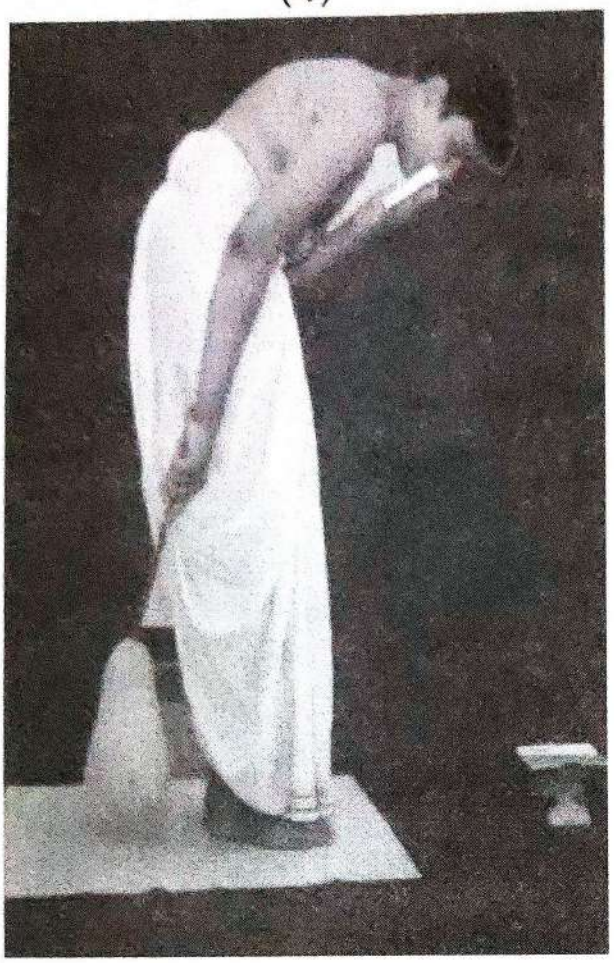
'इच्छामि खमासमणो' बोलना कैसे और शरीर को कैसे रखना, यह भी समझ लेते हैं ? सबसे पहले खड़े रहकर दोनों हाथ जोड़कर अंगुलियों और अंगूठे के बीच चरवला और मुहपत्ति रखकर, मस्तक झुकाकर.

'इच्छामि खमासमणो-वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए'

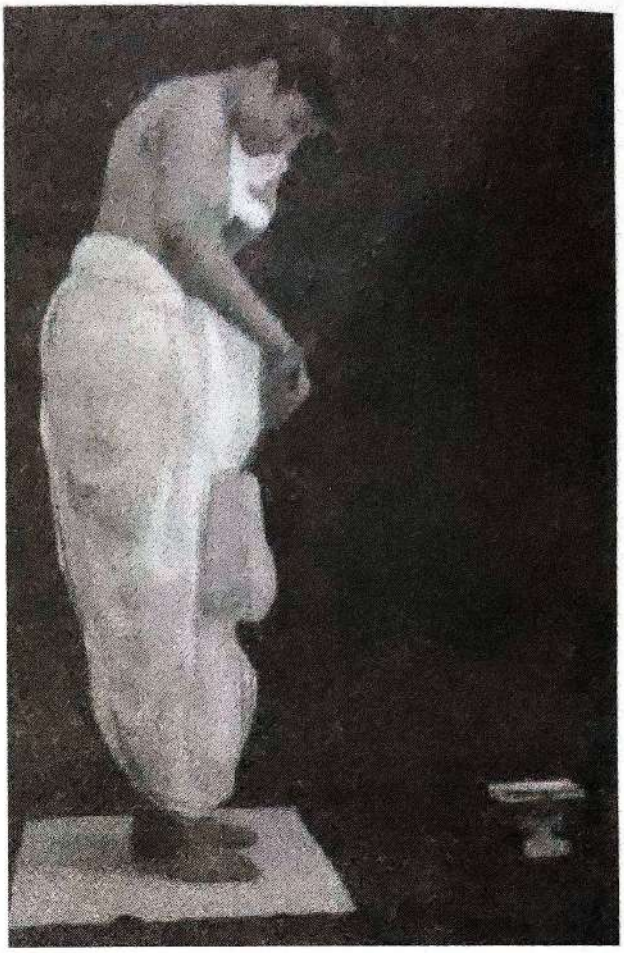
प्रथम चरवला दाँए हाथ में लेकर, पीछे कमर से पैर तक के हिस्से में पहले कमर से बाँए पैर की एड़ी एक (देखिए चित्र-१) दूसरी बार मध्य में (चित्र २) और तीसरी बार कमर से दाँए पैर की एड़ी तक ऊपर से नीचे तीन प्रमार्जन करना । इस के बाद इसी प्रकार चरवले से आगे की और कमर से बाये पेर के पंजे तक फिर इसी प्रकार बीच में और फिर इसी तरह कमर से दाये पेर के पंजे तक प्रमार्जना

इतना बोल कर चित्र अनुसार प्रमार्जना करें ।

(२)

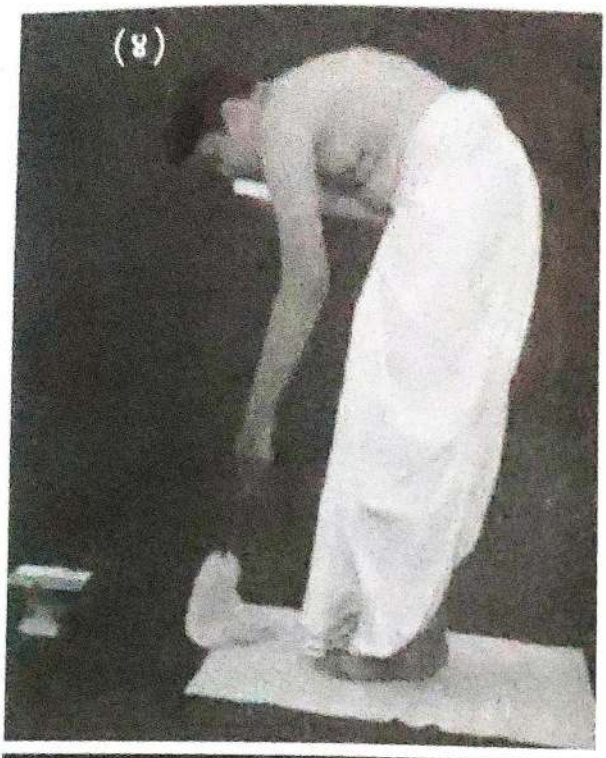


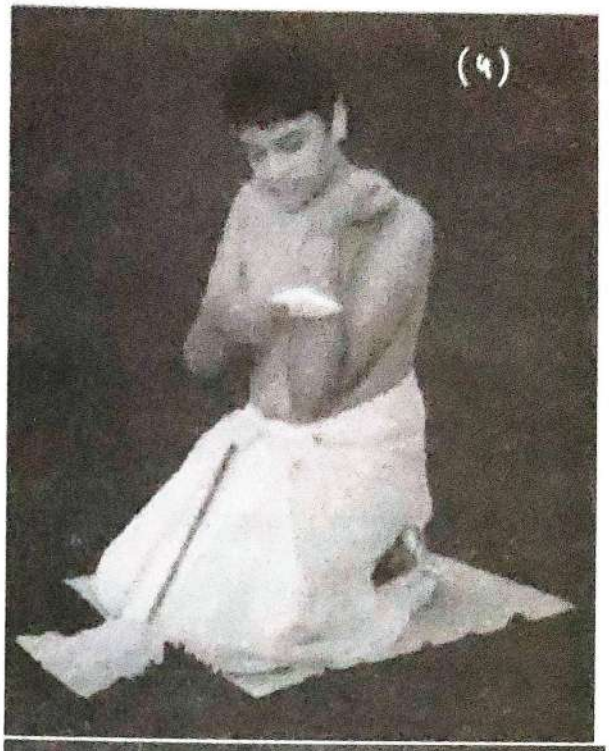
(३)

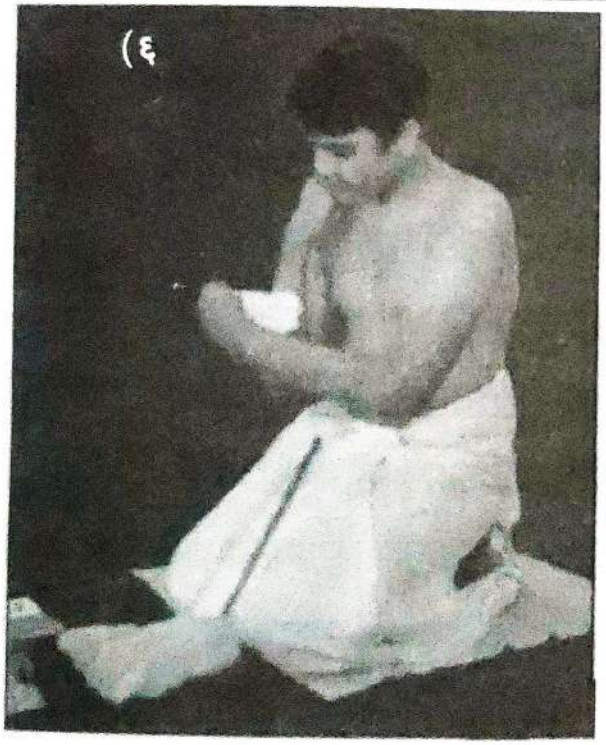


करें। इसके बाद पैर के आगे की भूमि पर (चित्र-३) इतनी जगह में प्रमार्जना करें कि पैर की अंगुलियों और घुटनों के सहारे बैठने पर घुटने उतनी जगह में आराम से आ सके ।....इसके बाद घुटनों के बल बैठकर चरवला गोद में रख दें और मुहपत्ति बाँए हाथ में लेकर मुहपत्ति से दाँई ओर के अंग की प्रमार्जना करें । कपाल से लेकर दाँए कंधे से होकर हाथ सीधा रखकर पंजे तक पूंजे दाहिनी ओर अंग की फिर हाथ खड़ा कर पीछे कोहनी तक प्रमार्जना करें (चित्र-४) ठीक ऐसे ही मुहपत्ति दाँए हाथ में लेकर बाँई ओर प्रमार्जना करें । (चित्र-५) अब मुहपत्ति से ३ बार चरवले पर प्रमार्जना (चित्र-६) करके चरवले पर मस्तक रखकर मत्थएण वंदामि बोलें । सिर ऊँचा करें चरवला हाथ में लेकर बैठे-बैठे ही जहाँ पैर टिकाने हैं वहाँ की भूमि तीन बार पूंजकर (चित्र-७) खड़े हो । यह है खमासमणा देने की विधि।

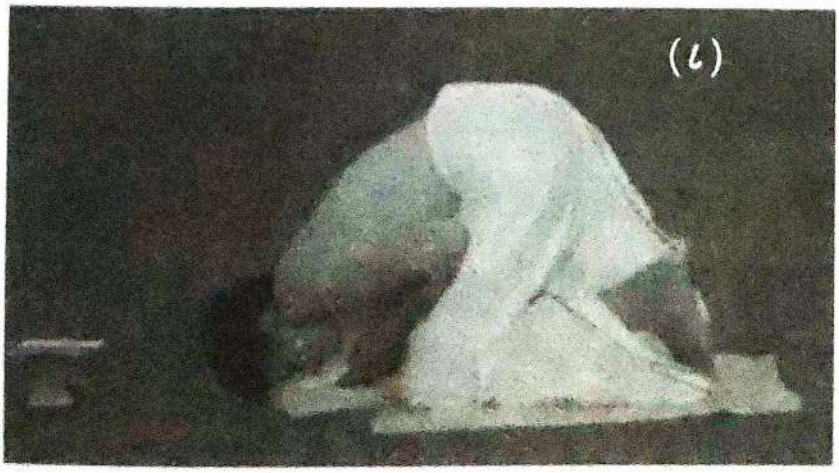
जहाँ-जहाँ भी खमासमणा देने की बात आए वहाँ-वहाँ इसी प्रकार प्रमार्जना करें।


(৪)


(৭)


(৫


(৬)


(৭)



पूंजने की इस क्रिया को सत्रह संड़ासा, प्रमार्जना कहा जाता है ।

संड़ासा का मतलब है संधि । गरम-गरम तपेली, देगची पकड़ने के साधन को संड़ासी कहा जाता है । दो हिस्सों के जुड़ने से यह नाम पड़ा है । खमासमणा देते समय जोड़ के बीच में रहे हुए किसी जीव को कष्ट न हो इसके लिए यह प्रमार्जना है । कदाचित् कोई जीव नहीं भी हो तो भी संभावना को ध्यान में रखकर प्रमार्जन करने से जीवों के प्रति दया के परिणाम उद्‌भवित होते हैं, इससे हृदय कोमल होता है और हृदय की कोमलता धर्मबीज को अंकुरण के लिए उपजाऊ भूमि की पूर्ति कर देती है।

इसके अलावा क्रिया करते समय यह पद्धति मन को क्रिया में जोड़े रखती है । सीधे-सीधे खमासमणा दे दें तो मन अन्यत्र भी भटक सकता है । जबकि नियत चेष्टापूर्वक करने में मन को क्रिया में जुड़ा हुआ रहना पड़ता है, जिससे वह नियंत्रित रहता है और जो क्रिया को फलवती बनाने के लिए बेहद जरुरी है।

कई गूढ़चिंतकों का यह भी मत है कि चरवले से जुड़ी दशियाँ ऊन की होती हैं और उन में विशेष प्रकार की ऊर्जा रही हुई है । खमासमणा देते समय शरीर पर घूमती दशियाँ रक्त-संचरण पर आश्चर्यकारी प्रभाव ड़ालती हैं और इसका प्रभाव पड़ता है । सत्रह संड़ासा की प्रमार्जना शारीरिक स्वस्थता को बनाए रखती है ।

खमासमणा देते समय शरीर के पाँच अंग नीचे छूने से आकार ऐसा बन जाता है कि शरीर के अंदर केंद्र में रही हुई शक्ति ऊर्ध्वगामिनी बनती है । ऐसा कैसे होता है, आइए समझते हैं ।

अपनी शक्ति का केंद्र शरीर के बिल्कुल बीचो-बीच है यानि नाभि के पीछे शक्ति केंद्र है । ऐसे तो सर्वसाधारण रुप से शक्ति नीचे ही प्रवाहित होती है, इससे हमें कोई लाभ नहीं होता, उल्टा नुकसान ही होता है । शक्ति का प्रवाह नीचे की

ओर होने से यह वासना विकार रुप में परिणमन होकर हानि करती है । यदि यह शक्ति ऊपर की ओर चढ़ाई जाए तो आध्यात्मिक-विकास में लाभदायी हो सकती है । खमासमणा देते समय बनने वाली शरीर की आकृति इसमें मददगार साबित होती है ।

सत्रह प्रमार्जना में से पीछे की तीन, आगे की तीन और पैर की प्रमार्जना होने के बाद बैठना होता है । बैठना ऐसे है कि जिससे नीचे का भाग (पेडु) दबे। इससे नाभि के नीचे का भाग बंद हो जाता है और ऊपर का भाग खुला रहता है । ऐसी स्थिति में नाभि के पीछे शक्ति-केंद्र में रही शक्ति को नीचे जाने का मार्ग बंद हो जाता है, ऊपर का भाग खुला रहता है । अब हमें शक्ति को ठेठ मस्तिष्क में ले जाना है इसके लिए मस्तिष्क को नाभि की ऊँचाई की अपेक्षा नीचे ले जाना पड़ता है । जब अपना सिर **'मत्थएण वंदामि'** बोलते जमीन पर रखते हैं, तब ऐसा होता है कि नाभि उपर रहती है मास्तक नीचे आता है। इस से नाभि में रही हुई शक्ति को मस्तिष्क की ओर प्रवाहित होने में सरलता रहती है । जब यह शक्ति मस्तिष्क में पहुँचती है तो मस्तिष्क शक्तिशाली बन सकता है । इससे शरीर संचालन का मस्तिष्क कार्य (आफिस वर्क) व्यवस्थित होता है ।

अन्य हेतुओं के साथ उपर्युक्त महत्वपूर्ण हेतु सिद्ध होने के कारण खमासमणे की क्रिया अपने आप में बहुत मायने रखती है । जैन-धर्म की लगभग सभी क्रियाओं में खमासमणे देने की विधि के पीछे ऐसे कितने ही रहस्य समाए हुए हैं।

जानकारी के अभाव में खमासमणा देने की प्रक्रिया इस हद तक विकृत हो चुकी है कि कभी तो हंसी आ जाती है ।

कहीं खड़े होकर खमासमणा तो दिया जाता है, नीचे सिर भी झुकता है, परन्तु दोनों हाथ इधर-उधर टेका देने में ही व्यस्त दिखाई देते हैं । कहीं खमासमणा देने के लिए हाथ तो जुड़ते हैं, पर सिर ऐसे का ऐसा ही रहता है, जरा भी नहीं झुकता ।

कहीं तो न सिर जमीन को छूता है, न हाथ जुड़ते हैं, मानो नमाज पढ़ी जा रही हो । कहीं बैठे-बैठे देते हैं उसमें भी हाथ तो जुड़ते ही नहीं हैं और सिर हिलता रहता है । कहीं इससे भी ज्यादा विचित्रता नजर आती है । ऐसी स्थिति

में सही परिणाम मिले कैसे ?

यदि खमासमणा गणधर-रचित मंत्राक्षर तुल्य सूत्रों के साथ ऊपर बताई हुई मुद्रा के साथ दिया जाए तो मस्तिष्क की ताकत कई तरह से बढ़ जाए । इससे बहुत सारे बड़े-बड़े रोगों से रक्षण होता है । यदि यही ढ़ंग से खमासमणा देने की प्रक्रिया चालू रहे तो सुषुप्त मन सक्रिय हो जाए और तब तो बेड़ा ही पार हो जाए।

सामायिक लेने की विधि में ही आठ खमासमणे देने की विधि बताई गई है । सबसे पहला खमासमणा देकर खड़े होकर पूज्य गुरुदेवश्री से आदेश मांगें, **''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! इरियावहियं पड़िक्कमामि ?''**



गुरुदेव कहेंगे, ''पड़िक्कमेह''

बादमें इच्छं कहकर संपूर्ण **'इरियावही'** सूत्र बोलें । यह सूत्र बोलते समय भी शरीर की विशिष्ट मुद्रा करना है । हाथ से योगमुद्रा और पैर से जिनमुद्रा । योगमुद्रा यानि बाँई-दाँई दोनों हथेलियों की अंगुलियों को एक-दूसरे के बीच फँसा दें । मतलब बाँए हाथ की कनिष्ठा और अनामिका के बीच दाँए हाथ की कनिष्ठा, बाँई ओर की अनामिका मध्यमा के बीच दाँई ओर की अनामिका और मध्यमा-तर्जनी के बीच मध्यमा, तर्जनी अंगूठे के बीच तर्जनी और बाँए अंगूठे पर दायाँ अंगूठा रखें । दोनों हाथों की कोहनी पेट पर टिकाएँ यह है योगमुद्रा ।

सूत्र बोलते समय पैरों को जैसे-तैसे नहीं रखना है, विशेष आकृति में रखना है । ऐसे खड़े रहना है कि दोनों पैरों के अंगूठों के बीच चार अंगुल का अंतर रहे और एड़ी की ओर कुछ कम यह **जिनमुद्रा** है ।

इन दोनों मुद्राओं में **'इरियावही'** सूत्र बोलना है । एक नियम सार्वत्रिक है कि हर काम अपनी भूमिका की अपेक्षा रखता है । मकान बांधने से पहले नींव चाहिए । रंगने के पहले कपड़ा स्वच्छ चाहिए । पेंटिंग करने से पहले अस्तर जरुरी है । ऐसे ही महानिशीथ, भगवती आदि सूत्रों में बताया गया है कि जिनशासन की हर क्रिया से पहले किए हुए पापों का स्वीकार और पश्चात्ताप करना जरुरी

है । पाप-निवृत्ति से पहले हो गए पापों के प्रति धिक्कार भाव जरुरी है ।

'इरियावही' सूत्र पश्चात्ताप सूत्र है । इस सूत्र में बताया गया है कि अब तक मुझसे आते-जाते, चलते-फिरते ५६३ प्रकार के जीवों में से किसी भी जीव की किसी भी प्रकार से विराधना या हिंसा हुई हो, उन्हें त्रास दिया हो तो उसे धिक्कारता हूँ ।

इस सूत्र में विविध जीवों और उनकी विविध विराधनाओं को याद किया गया है और अंत में **'मिच्छामि दुक्कड़ं'** कहकर क्षमापना का फर्ज अदा किया गया है ।



'इरियावहि' के बाद इन्ही मुद्राओं में **'तस्स उत्तरी'** सूत्र बोलना है । **'इरियावही'** सूत्र में पापों को याद करके क्षमापना करना है, तो तस्स उत्तरी सूत्र द्वारा पापों से शुद्ध होने की क्रिया बताई गई है । उपर्युक्त पापों से मेरी आत्मा कलंकित या मलिन हुई है, उसे शुद्ध करने का यह सूत्र है और उसकी शिक्षा-स्वीकार स्वरुप कायोत्सर्ग करने की प्रतिज्ञा भी इसमें निर्दिष्ट है ।

त्याग किए बिना शुद्धि असंभव है और सबसे बड़ा त्याग है, काया की ममता का त्याग । **कायोत्सर्ग का मतलब है काया का त्याग ।** थोड़े समय के लिए भी काय-त्याग करने के लिए कायोत्सर्ग करने की प्रतिज्ञा इस 'तस्स-उत्तरी' सूत्र में है ।

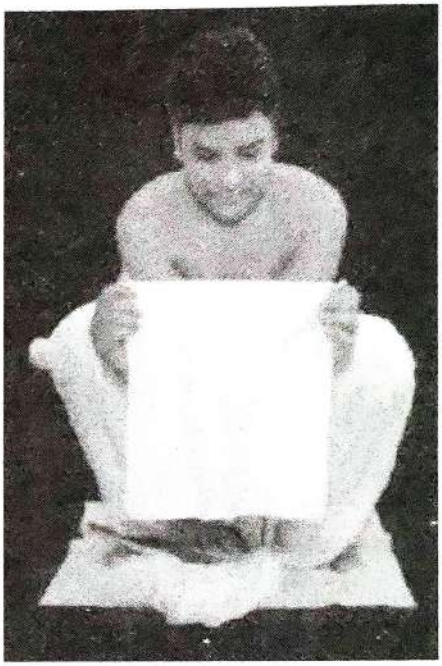
तत्पश्चात् 'अन्नत्थसूत्र' बोलना है इसी मुद्रा में । इस सूत्र में की हुई कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा कैसे पूरी करनी इसकी मर्यादा और अपवादों का वर्णन है । अंत में प्रतिज्ञा का प्रघोष किया गया है, **'अप्पाणं वोसिरामि'** द्वारा । यानि आत्मा का विसर्जन करता हूँ । यहाँ विसर्जन (वोसिराने) का अर्थ कायारुप आत्मा का त्याग है ।

इतना बोलकर कायोत्सर्ग (काउसग्ग) करना है । इसमें पैर की मुद्रा यथावत् रखकर हाथ की मुद्रा में फेरबदल करना है । बाएँ हाथ में चरवला और दाँए हाथ में मुहपत्ति रखकर दोनों हाथ कमर के बाहरी भाग में शरीर से जरा दूर

लटका दें । बिल्कुल स्थिर होकर महापुरुषों ने जघन्यतम समय की जो शिक्षा दी उसके अनुसार लोगस्स सूत्र के 'चंदेसु निम्मलयरा' पद तक का पाठ मन में ही करें ।

यह पाठ होने के बाद हाथ की योगमुद्रा बनाकर संपूर्ण ''**लोगस्स**'' का उच्चारणपूर्वक पाठ करें ।

सामायिक में प्रवेश करते समय पहले सामायिकादि अनुष्ठान बतानेवाले चौबीस परमात्मा के स्मरण रुप मंगल करना चाहिए । इस हेतु की सिद्धि के लिए **'लोगस्स'** का संपूर्ण पाठ किया जाता है । **'लोगस्स'** का वास्तविक नाम **'नामस्तव'** है क्योंकि इसमें चौवीस भगवान के नाम का स्मरण किया गया है ।



इसके बाद पहले बताई गई विधि अनुसार खमासमणा दें और खड़े होकर आदेश मांगें, ''**इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक मुहपत्ति पड़िलेहुं ?**'' गुरुदेव आदेश देते हैं, **'पड़िलेहेह'** अब **'उत्कटिकासन'** में बैठें इसे **गोदोहासन** भी कहा जाता है । गो=गाय, दोह=दोहने का आसन । जब कोई गाय दोहता है तब वह दोनों पैर खड़े रखकर जमीन पर टिके बिना बैठता है । दोनों हाथ की कोहनी दोनों घुटनों के बीच पेट पर और दोनों हाथ गाय के आंचल (थन) दोहने जैसी स्थिति में रखें । फर्क इतना ही है कि गाय दोहते समय केवल पंजे पर ही बैठते हैं जबकि यहाँ पैर से एड़ी तक का भाग जमीन से छुआना है और आंचल के स्थान पर मुहपत्ति रखकर पड़िलेहन करना है ।

वैसे तो मुहपत्ति का पड़िलेहन एक साधारण क्रिया दिखाई देती है पर वास्तव में यह अत्यंत गंभीर और महत्वपूर्ण क्रिया है । कई महापुरुषों के शब्दों में कहें तो मुहपत्ति के पड़िलेहण में समस्त जिनशसान का सार निहित है और यह संपूर्णतः सत्य है ।

मुहपत्ति का पड़िलेहण मात्र मुहपत्ति का नहीं आत्मा का संपूर्ण पड़िलेहण है । पड़िलेहण अपभ्रंश शब्द है इसको संस्कृत भाषा में प्रतिलेखन कहा जाता है।

प्रति यानि तरफ

लेखन यानि अवलोकन करना ।

आत्मा की ओर, आत्मा का अवलोकन, यह अर्थ है प्रतिलेखन का ।

मुहपत्ति खोली और इधर-उधर घुमाकर घड़ी कर दी और हो गया पड़िलेहन ऐसा नहीं है ।

मुहपत्ति का पड़िलेहन मुहपत्ति खोलकर बंद करने तक पचास बोल बोलने हैं और वे भी चाहे जैसे नहीं । कौन-सा बोल कौन-सी जगह बोलना और क्यों बोलना ? कौन-से रहस्य के साथ बोलना इसका भी सुव्यवस्थित गणित बताया गया है ।

यह गणित कैसा है ? किन हेतुओं को अपने में समाए है, किन रहस्यों से परिपूर्ण है ? इसकी जानकारी एक बार मेरे परमकृपालु गुरुदेव श्री (पूं.पं. श्री अभयसागरजी म.) ने वाचना के माध्यम से दी थी । उन्होंने फरमाया था कि मुहपत्ति का पड़िलेहण कैसे करना ? मुझे इसका संशोधन करने मे अठारह महीने लगे । अनेक मुद्रित, अमुद्रित, हस्तलिखित शास्त्र, कुलक आदि का गहन अध्ययन किया, इसके अलावा बुजुर्ग आचार्य भगवंतों, साधु-साध्वी भगवंतों, श्रावक-श्राविकाओं का भी संपर्क किया । कई बुजुर्गों को रहस्य की जानकारी नहीं थी, पर पड़िलेहण की परंपरा कैसी है ? यह तो जानने मिला और इन दृष्टिकोणों को मिलाने के बाद जो समाधान हुआ वह यह रीत है । पूज्यश्री ने ऐसा कहकर मुहपत्ति का पड़िलेहण करके बताया ।

मुहपत्ति का रंग, माप, कोर, (किनार) सिरा, तह आदि के बारे में तो हम पहले ही समझ चुके हैं ।

अब पड़िलेहण-विधि की ओर ध्यान देना है ।

सर्वप्रथम मुहपत्ति को पूरी तरह खोल दीजिए ।

मुहपत्ति को बंधी किनार वाले सिरों से इस तरह पकड़े कि बीचवाली सीधी

तह की रेखा बराबर हमारी सीध में आए ।

अब मुहपत्ति पर दृष्टि-पड़िलेहण करते हुए बोलें-''**सूत्र**'' अब मुहपत्ति को पलटाकर दृष्टि घुमाकर बोले ''**अर्थ तत्व करी सद्दहुँ ।**''

उसके बाद उल्टे हाथ में पकड़े हुए सिरे को यथावत् रखकर दाँए हाथवाला सिरा बाँई ओर ले जाकर रख दें फिर दाँई ओर लटकते सिरे को दाँए हाथ से पकड़ कर तीन बार खंखेरते हुए बोलें

२ ३ ४

''**सम्यक्त्व-मोहनीय, मिश्रमोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय परिहरुँ**''

फिर दाँए हाथ में इन सिरों को पकड़ रखकर जिस रीति से बाएँ हाथ पर रखी थी ठीक उसी तरह दाँए हाथ पर रखकर उसके लटकते सिरे को बाँए हाथ से पकड़ कर तीन बार खंखेरते हुए बोलें

५ ६ ७

''**कामराग, स्नेहराग-दृष्टि राग परिहरुँ**''

इस स्थिति में मुहपत्ति की आड़ी घड़ी बराबर हमारे सामने आ जाएगी।

इसके बाद मुहपत्ति को उठाकर बिलकुल बीच में से घड़ी करके मुहपत्ति को वधूटक आकार वाली बनाएँ । वधूटक यानि घूंघट । स्त्री घूंघट निकालती है तब मुंह के आगे की साड़ी की जैसी स्थिति होती है वैसी घड़ी करें ।

ऐसी घड़ी करने के लिए दाँए हाथ की अंगुलियों के बीच मुहपत्ति के थोड़े-थोड़े हिस्से को क्रमशः फँसाएँ । अंगुलियों और अँगूठे के बीच आड़ी घड़ी वाले भाग को दबाने से मुहपत्ति का आकार वधूटक जैसा हो जाएगा ।

अब बाँए हाथ की कोहनी हृदय की ओर रहे इस तरह रखकर दाँए हाथ में रही हुई मुहपत्ति निम्नानुसार क्रम से घूमाएँ ।

	८	९	१०
१. हथेली से हृदय की ओर	**सुदेव**	**सुगुरु**	**सुधर्म आदरुं**
	११	**१२**	**१३**
२. हृदय से हथेली को ओर	**कुदेव**	**कुगुरु**	**कुधर्म, परिहरुं**
	१४	**१५**	**१६**
३. हथेली से हृदय की ओर	**ज्ञान**	**दर्शन**	**चारित्र आदरुँ**

	१७	१८	१९
४. हृदय से हथेली की ओर	ज्ञान विराधना	दर्शन विराधना	चारित्र विराधनता परिहरुं
	२०	२१	२२
५. हथेली से हृदय की ओर	मनगुप्ति	वचनगुप्ति	काय गुप्ति आदरुं
	२३	२४	२५
६. हृदय से हथेली की ओर	मनदंड़	वचनदंड़	कायदंड़ परिहरुं

यह ध्यान रखें कि हथेली से हृदय की ओर मुहपत्ति ले जाएँ तब मुहपत्ति हाथ से जरा सी ऊँची रहे और हृदय से हथेली की ओर ले जाएँ तब हाथ पर थोड़ा घिसते हुए ले जाएँ और यह भी ख्याल रखें की मुहपत्ति फिराते हर बार यानि छहों बार थोड़े थोड़े अंतर में तीन बार अटकें । यानि हथेली से हृदय और हृदय से हथेली की ओर जाते हुए तीन बार अटकें ।

'आदरुँ' शब्द वाला वाक्य बोलते हृदय की ओर मुहपत्ति ले जाने की क्रिया को जैन परिभाषा में **'अखोड़ा'** और **'परिहरुँ'** शब्द वाला वाक्य बोलते हथेली की ओर मुहपत्ति ले जानी की क्रिया को 'पखोड़ा' कहा जाता है ।

इतना होने के बाद दाँए हाथ में तो इसी स्थिति में मुहपत्ति रहने दें और बाँया हाथ पलट दें मतलब अंगुलियों के पोरों वाला हिस्सा हमारे सामने था उसे उलट कर नाखून वाला हिस्सा सामने कर दें । अब मुहपत्ति को कंधे से हथेली की ओर ले जाएँ और बोलें ।

२६ २७ २८ २९

हास्य-रति-अरति-परिहरुँ

अब मुहपत्ति जैसी दाँए हाथ में रखी थी वैसे ही बाँए हाथ में वधूटक बनाकर रखें और फिर दाँए हाथ की कोहनी के ऊपरी भाग से शुरु कर हाथ पलटाकर हथेली के पीछे के भाग तक में मुहपत्ति फिराने के दरम्यान बोलें

२९ ३० ३१

भय-शोक-दुगंछा परिहरुँ

इतना होने के बाद बीच में से घड़ी की हुई मुहपत्ति के दोनों सिरों को

दोनों हाथ में पकड़कर कपाल पर पहले तिलक करने के भाग में यानि बीचोबीच में फिर दांई भौंह पूरी होती है वहाँ और अंत में बाँई भौंह पूरी होती है वहाँ मुहपत्ति छुआएँ ।

३२	३३	३४
पहली बार तिलक	दूसरी बार	तीसरी बार बाँई
स्थान पर कृष्णलेश्या,	दांई भौंह नीललेश्या	भौंह-कापोतलेश्या

और फिर मुहपत्ति को दोनों हाथों में यथावत् रखकर शरीर से थोड़ा दूर ले जाकर खंखेरते हुए बोलें, ''परिहरुँ ।''

अभी मुहपत्ति को इसी तरह पकड़े रहें अब मुहपत्ति को निम्न स्थानों पर छुआते हुए बोल बोलें

३५

नाक के नीचे होठ पर ''**रसगारव**'',

३६

दाँए गाल पर ''**ऋद्धिगारव**'',

३७

बाँए गाल पर ''**सायागारव**''

खंखेरते हुए बोले, ''**परिहरुँ**'' ।

मुहपत्ति को ऐसे ही पकड़कर नीचे बताए स्थानों पर छुआंकर बोल बोलते जाएँ

३८

सीने के मध्यभाग में **मायाशल्य,**

३९

सीने के दाँए भाग में **नियाणशल्य,**

४०

सीने के बाँए भाग में **मिथ्यात्वशल्य**

खंखेरते हुए ''**परिहरुँ**'' बोलें ।

मुहपत्ति को अब भी वैसे ही हाथ में पकड़े रखें और

४१

दाँए कंधे पर छुआकर बोलें **'क्रोध'**

४२

बाँए कंधे पर छुआकर बोले **'मान'**

झटकने की क्रिया करते हुए बोलें **'परिहरुं'**

इसके बाद

४३

दाँई बगल को छुआकर बोले, **'माया'**

४४

बाँई बगल को छुआकर बोलें **'लोभ'**

खंखेरते हुए बोलें **'परिहरुं'**

अब मुहपत्ति की तह कर लें और बाँए हाथ में चरवला लेकर चरवले की दशियाँ तीन बार दाये धूटन से छुआते हुए बोलें

४५	४६	४७
पृथ्वीकाय	**अपकाय**	**तेउकाय की जयणा करुँ**

फिर दाये हाथमें चरवला लेकर बाये धूटन से छूआते हुए बोले

४८	४९	५०
वायुकाय	**वनस्पतिकाय**	**त्रसकाय की रक्षा करुँ**

बस, अब मुहपत्ति का प्रतिलेखन पूरा हुआ ।

कितनी लंबी प्रक्रिया है मुहपत्ति के पड़िलेहण की ।

मुहपत्ति तो एक माध्यम है, इसके द्वारा शरीर के प्रत्येक अंग और शरीर में रही हुई आत्मा का पड़िलेहण हो जाता है । इससे ही बारबार मुहपत्ति के पड़िलेहण का विधान बताया गया है ।

मुहपत्ति स्वरुप इस रुमाल जैसे टुकड़े का ही पड़िलेहण करना हो तो बारबार पड़िलेहण की खोलने पलटाने बंद करने की प्रवृत्ति की क्या जरुरत ? क्या थोड़ी-थोड़ी देर में इसमें जीव घुस जाते हैं ?

कई पुण्यात्मा इसी विचार के शिकार हैं, इससे वे मुहपत्ति-पड़िलेहण के समय या तो मुहपत्ति खोलते ही नहीं या आधी-अधूरी खोलकर बंद कर देते हैं । यदि वे पड़िलेहण की वैज्ञानिक पद्धति समझ लें, तो उनकी क्रिया में अधूरापन नहीं रहे, और पड़िलेहण बराबर होने लगे ।

प्रश्न : पड़िलेहण करते छोटे-छोटे सूत्र जैसा बोलने का विधान है इसका क्या मतलब ?

उत्तर : इन छोटे-छोटे सूत्रों को जैन परिभाषा में 'बोल' कहा जाता है ।

मुहपत्ति को एक बार पड़िलेहण करते पचास बोल आते हैं । इसके पीछे भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण है । इन बोलों का विस्तृत वर्णन किया जाए तो जैनशासन का संपूर्ण तत्वज्ञान समा जाए ।

हमारे वयोवृद्ध और तत्वज्ञ पूज्य मुनिराज श्री पूर्णानन्दसागरजी म.सा. ने बताया था कि एकबार पूज्य गुरुदेवश्री शंखेश्वर तीर्थ पधारे । वहाँ पूज्य आचार्य श्री कलापूर्णसूरीश्वरजी महाराज भी विराजमान थे । दोनों विभूतियों का मिलन हुआ तब पू.आ. कलापूर्णसूरिजी महाराज ने आगम विशारद पूज्य गुरुदेवश्री को मुहपत्ति-पड़िलेहण के विषय पर वाचना देने के लिए कहा । तब मुहपत्ति पड़िलेहण संबंधी वाचना सात दिन तक चली । इस वाचना में विशाल संख्या में श्रमण श्रमणी भगवंत उपस्थित थे । एक दृश्य तो ऐसा आया जिसमें दोनों महाविभूतियों की सरलता और सहजता के दर्शन हुए । पूज्य गुरुदेवश्री अपनी मुहपत्ति खोलकर पड़िलेहण की विधि बताते जा रहे थे और पूज्य आचार्यदेव भी अपनी मुहपत्ति खोलकर उनका अनुकरण कर रहे थे । तीन बार इस तरह पड़िलेहण किया । तात्पर्य यह है कि मुहपत्ति के पड़िलेहण और उसके बोलों में कितना रहस्य भरा है ।

इन **बोलों** का काम भी रहस्यपूर्ण है । इस बोल के बाद वो ही बोल क्यों ? इसके पीछे भी कार्य-कारणभाव की आश्चर्यकारी श्रृंखला सर्जित है ।

यह बोल इस अंग पर ही क्यों बोलना ? इस विषय में उन अंगों की महत्ता समझाई गई है और तब ही मुहपत्ति के आकार में परिवर्तन करने की पद्धति का माहात्म्य बताया गया है । आत्मा का कौन-सा दुर्गुण किस अंग से सम्बद्ध है, उसे

दूर करने के उपाय जैसी गंभीर बातें मुहपत्ति के पड़िलेहण में छुपी हुई है ।

यह सब जानकारी इसी पुस्तक के पिछले हिस्से में **'मुहपत्ति के बोल खोले कर्म की पोल'** नामक अध्याय में हैं ।

प्रश्न : ये पचास बोल हर व्यक्ति को बोलने चाहिए ?

उत्तर : नहीं । पुरुषों को पचासों पचास और श्राविकाओं को चालीस ही बोलने चाहिए । जो बोल उन्हें नहीं बोलने हैं । उन अंगों की प्रमार्जना भी उन्हें नहीं करना ।

प्रश्न : ऐसे कौन-कौन से बोल हैं ? जो स्त्रियों को नहीं बोलने हैं ?

उत्तर : ललाट (कपाल) पर बोले जाने वाले तीन, छाती पर बोले जाने वाले तीन, कंधे के ऊपर के दो, कंधे के नीचे के दो, कुल १० बोल स्त्रियों को नहीं बोलने हैं ।

प्रश्न : इस भेद का कोई खास प्रयोजन ?

उत्तर : स्त्रियों के उपर्युक्त अंग वस्त्रावृत ही होते हैं, इससे इनके पड़िलेहण का कोई प्रयोजन ही नहीं है ।

प्रश्न : कपाल कहाँ वस्त्रावृत्त होता है ?

उत्तर : अब नहीं होता, बाकी आर्यसंस्कृति तो यही कहती है कि किसी भी धार्मिक क्रिया को करते समय स्त्रियों का मस्तक ढ़ँका हुआ ही होना चाहिए और वह भी कपाल तक । बोलों के निषेध के पीछे महापुरुषों ने उदात्त संस्कृति का अनुसरण करनेवाले परिधान की तरफ भी कुशलता से अंगुलि निर्देश कर दिया है ।

मुहपत्ति का पड़िलेहण कैसे करना ? इस विषय को यथासंभव स्पष्ट करने का प्रयास किया है तो भी टी.वी., वीड़ियो और कम्प्यूटर के युग में पुस्तकों की ओर दुर्लक्ष्य होने से कभी समझ नहीं भी पड़े तो ज्ञानी-गुरुदेव से समझने की कोशिश करें ।

इस प्रकार मुहपत्ति का पड़िलेहण हो जाए तो खड़े होकर पहले बताए अनुसार खमासमणा दें और खड़े होकर हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर आदेश

मांगे, ''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक संदिसाहुं ?''

अर्थ : मैंने सामायिक करने की योग्यता प्राप्त कर ली है, इससे हे भगवन् ! आप आपकी इच्छा से आदेश दें कि मैं सामायिक के लिए आदेश मांगू ?''

गुरुदेव कहते हैं, **''संदिसह''**

अर्थ ''आज्ञा है ।''

फिर **''इच्छं''** बोलकर खमासमणा देकर एक आदेश मांगे ।

''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक ठाऊँ ?''

अर्थ : हे भगवन् ! आप आपकी इच्छा से आदेश दें कि मैं सामायिक में स्थिर होऊँ ?''

गुरुदेव कहते है, **''ठाएह''**

अर्थ : स्थिर हो ।

''इच्छं'' कहकर हाथ जोड़े, मन में नवकार गिनें । गुरुदेव से कहें,

''इच्छकारी भगवन् ! पसाय करी सामायिक दंड़क उच्चरावोजी ।''

अर्थ : ''हे भगवन् ! आप इच्छा से कृपा कर मुझे सामायिक-पाठ उच्चराइए अर्थात् कराइए ।''



हाथ जोड़कर अत्यंत बहुमान से मस्तक झुकाकर गुरुदेव के मुख से **''करेमि-भंते''** का पाठ सुनें और मन में धारण करें । पूज्य गुरुदेवश्री की उपस्थिति में उनके मुख से ही यह पाठ सुनें । उनकी अनुपस्थिति में जिस भाग्यशाली ने सामायिक ली हो उनके मुखे से पाठ सुनें । और यदि किसी ने सामायिक नहीं ली हो तो मन में कल्पना करें कि पूज्य गुरुदेवश्री पाठ फरमा रहे हैं और मैं उनका अनुसरण कर रहा हूँ । 'करेमि भंते' का पाठ स्वयं ही मनमें बोल जाएँ।

प्रश्न : जहाँ सामायिक ली जा रही हो वहाँ सामायिक में कोई व्यक्ति नहीं हो, पर अन्य कोई बुजुर्ग या जानकार सज्जन हो तो उनसे सामायिक उच्चरलें तो ?

उत्तर : नहीं, जिसने सामायिक ले रखी हो वह भले छोटा बच्चा ही तो भी उसके पास ही पाठ उच्चरना चाहिए । बिना सामायिक वाले कितनी भी बड़ी उम्र के हों उनके पास पाठ नहीं उच्चरा जाता ।

प्रश्न : ऐसा क्यों ?

उत्तर : इसलिए कि 'करेमि भंते' का पाठ वही व्यक्ति उच्चरा सकता है जो सामायिक में हो । जो सामायिक में नहीं हो वह दूसरों को सामायिक की प्रतिज्ञा नहीं करा सकते । आगमोद्धारक पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी म.सा. ने लिखा है कि पच्चक्खाण के पाठ दो तरह के होते हैं एक के अंत में 'वोसिरामि' और दूसरे के अंत में 'वोसिरइ' आता है ।

वोसिरामिवाला पाठ मूलगुणी और वोसिरइवाला पाठ उत्तरगुणी कहा जाता है । मूलगुण के पाठवाला पच्चक्खाण वो ही करवा सकते हैं जो स्वयं पच्चच्खाण में हों । 'करेमि भंते' वोसिरामि वाला पाठ है इससे इसका पाठ-उच्चारण वही कर सकता है जो सामायिक में हो । तिविहार-चौविहार आदि पच्चक्खाण का पाठ कोई भी करवा सकता है क्योंकि उसके अंत में 'वोसिरइ' शब्द आता है इससे वो उत्तरगुणी है । यह एक मर्यादा है और उसका पालन तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा की आराधना है । पूज्य साधु-साध्वी भगवंत सदा सामायिक में ही होते हैं, पोषार्थी भी सामायिक में होते हैं और सामायिक लिया हुआ व्यक्ति भी सामायिक में है इससे उनसे ही सामायिक उच्चरना योग्य है ।

प्रश्न : सामायिक हमें ही लेना हैं, हमें ही पालना है तो इसकी प्रतिज्ञा भी हमें ही ले लेना-उच्चर लेना चाहिए न ?

उत्तर : सही बात है, किंतु यह पाठ बहुत अर्थ-गंभीर है । प्रतिज्ञा भी महत्वपूर्ण है । महत्ता युक्त पाठ भी महान् वृद्धजनों के मुख से ही शोभा देता है ।

जैसे संसद में प्रधानमंत्री अपने पद की शपथ लेते हैं तब राष्ट्रपति के वाक्य का ही अनुसरण करते हैं । 'मुझे तो बहुत अच्छा बोलना आता है, लाखों लोगों में घंटों धाराप्रवाह बोल सकता हूँ, मुझे इनकी पराधीनता की क्या आवश्यकता ?' ऐसा सोचकर प्रधानमंत्री राष्ट्रपति की उपेक्षा नहीं करते, क्योंकि यह शपथ

अत्यंत महत्वपूर्ण है । शपथ-ग्रहण विधि पद का गौरव बढ़ानेवाली है ऐसा ही यहाँ भी है ।

कारणवश सामायिक लेने की विधि बैठे-बैठे करने की स्थिति हो तो भी यह प्रतिज्ञा लेते समय अवश्य खड़े होना चाहिए, इससे बहुमान पुष्ट होता है ।

करेमिभंते का पाठ सामायिक का **'प्रतिज्ञा-सूत्र'** है । सामायिक में क्या-क्या त्याग करना ? क्या-क्या करणीय है ? कितनी समय-मर्यादा है ? इसकी स्पष्ट जानकारी इस पाठ में है । यह जानकारी पाकर समझकर निष्ठापूर्वक सामायिक करना चाहिए ।

संक्षेप में, इस प्रतिज्ञा का सार यह है कि, 'हे भगवंत ! मैं सामायिक कर रहा हूँ। मैं जब तक नियम में हूँ तब तक सावद्य-व्यापार (सपाप) प्रवृत्तियों का त्याग करता हूँ । इन प्रवृत्तियों को मैं मन-वचन-काया से न करुंगा, न करवाऊँगा । हे भगवंत ! अब तक मैंने ऐसी जो सपाप प्रवृत्ति की उनका मैं त्याग करता हूँ और ऐसे पाप से युक्त आत्मा को वोसिराता हूँ ।'

प्रश्न : इस पूरी प्रतिज्ञा में कहीं भी सामायिक की समय-मर्यादा का उल्लेख नहीं है तो फिर सामायिक दो घड़ी ४८ मिनिट की होती है, ऐसा कैसे जानें ?

उत्तर : पूर्वाचार्य श्री रत्नशेखरसूरि म. ने इसकी स्पष्टता करते हुए बताया है कि जहाँ प्रतिज्ञा या पच्चक्खाण में समय की मर्यादा नहीं बताई वहाँ कम-से-कम दो घड़ी का समय समझ लेना चाहिए । जैसे सुबह नवकारसी का पच्चक्खाण लिया जाता है, यह भी एक प्रकार की प्रतिज्ञा ही है । इसमें भी कहीं समय-मर्यादा नहीं बताई है । हाँ, पोरिसी, साढपोरिसी आदि पच्चक्खाण में समय-मर्यादा बताई है । नवकारसी के पच्चक्खाण में एसी समय मर्यादा नहीं दर्शाइ है तो समज लेना चाहिए कि सूर्योदय से ४८ मिनिट के बाद ही मुँह में आहार पानी लिया जा सकता है, इससे पहले नहीं । ऐसे ही यहाँ भी समय-मर्यादा निर्दिष्ट नहीं है तो भी दो घड़ी ४८ मिनिट का समय सर्व साधारण से समझ लेना चाहिए ।

दूसरा तर्क यह है कि तत्वार्थ सूत्र में वाचक प्रवर श्री उमास्वातिजी भगवंत ने आमुहूर्त्तात् सूत्र द्वारा एक ध्यान की समय मर्यादा ज्यादा से ज्यादा दो घड़ी

की बताई है । सामायिक में मनको भी सावद्य व्यापार के ध्यान से वंचित रखना है, इसकी मर्यादा दो घड़ी से ज्यादा नहीं हो सकती ।

इस तथ्य की सिद्धांतों में भी पुष्टि की गई है

त्यक्तार्तरौद्रध्यानस्य, त्यक्त सावद्यकर्मणः ।
मुहूर्त्तं समता या तां, विदुः सामायिकव्रतम् ।।

अर्थ : जिसने आर्तध्यान, रौद्रध्यान त्यागा है, सावद्यकर्म भी छोड़ा है और जिसकी समता मुहूर्त्त=दो घड़ी जितनी है, उसे सामायिक व्रत कहा जाता है ।

'**उपदेश कल्पवल्लि**' नामक ग्रंथ में पूज्य इन्द्रहंसगणि महाराज भी बताते हैं कि-

सामाइअम्मि उ कए, समभावो सावयाण घड़ियदुगं ।
आउं सुरेसु बंधइ, इत्तियमित्ताइं पलियाइं ।।
बाणवह कोड़िओ, लक्खा गुणसट्ठि सहस्स पणवीसं ।
नवसय पणवीसाए, सतिहा अड़भाग पलियस्स ।।

अर्थ : श्रावकों को सामायिक करने से दो घड़ी तक समभाव रहता है और इससे ९२, ५९, २५, ९२५ ३/८ यानि बाणवे करोड़, उनसाठ लाख, पच्चीस हजार नौ सो पच्चीस सही तीन बटे आठ पल्योपम प्रमाण देवलोक का आयुष्य बांधते हैं मतलब इतने वर्षों तक देवता जितने पुण्य के आधार पर सुख का भोग करता है इतना पुण्य दो घड़ी की सामायिक करने से उत्पन्न होता है।

ऐसा कहकर सामायिक दो घड़ी ४८ मिनिट की होती है, यह बात स्पष्ट रुप से बताई है ।

यह बात उचित भी लगती है । सामायिक की समय मर्यादा तो होना ही चाहिए न ? 'जाव नियमं' वाक्य का कोई कायदा तो होना ही चाहिए । यदि नहीं हो तो जिसका जैसा मन हो वैसा करने लगे । पच्चक्खाण में समय की मर्यादा नहीं बताई हो तो जिसकी जितनी अनुकूलता हो उतने समय की सामायिक करने लगे और यह तो घटते भावों का काल है । कम से कम समय में धर्म होता हो तो एक मिनिट भी ज्यादा धर्म नहीं करना, ऐसी मनोवृत्ति वाले सज्जन भी इस

काल में सुलभ हैं ।

उपदेशकल्प वल्लिकार इसी बात की पुष्टि करते हैं :-

काउण तक्खणं चिय, करेइ वा जहिच्छाए ।

अणवट्ठिय सामाइयं, अणायराओ न तं सुद्धं ।।

अर्थ : सामायिक लेकर तुरंत पार ले या मर्जी अनुसार वर्तन करे तो अनवस्था दोष आता है अर्थात् सामायिक का अनादर होता है, ऐसी सामायिक शुद्ध नहीं कही जाती।

पूरी व्यवस्था में ही गड़बड़ हो जाती है । ऐसा नहीं होने देने के लिए महापुरुषों ने एक निश्चित मर्यादा बताई है कि सामायिक एक मुहूर्त्त यानि दो घड़ी (४८ मिनिट) की होती है ।

विशेषावश्यक भाष्य की २६८३ वीं गाथा के पद **'दुविहं तिविहेण छिन्नकालं तं।'** का अर्थ बताते हुए मलधारी हेमचंद्राचार्य भगवंत ने **छिन्नकाल** का अर्थ 'दो घड़ी' बताई है ।

यह रही पंक्ति-**छिन्नकालं द्विघटिकादिकाल-मानोपेतम्'** इससे भी सामायिक की अवधि दो घड़ी (४८ मिनिट) स्पष्ट होती है ।

प्रश्न : तो क्या एक ही बार करेमिभंते उच्चरकर सामायिक की धारणा नहीं हो सकती ? ४८ मिनिट के बदले ९६ मिनिट नहीं बैठ सकते ?

उत्तर : बिल्कुल नहीं । एक **'करेमि भंते'** में आनेवाले पाठ **'जाव-नियमं'** का अर्थ दो घड़ी बता ही दिया है तो फिर इससे अधिक समय की धारणा कैसे हो सकती है । एक सामायिक पूर्ण होने के बाद दूसरी सामायिक करनी हो तो दूसरी बार सामायिक लेना ही पड़ता है । ऊपर के शास्त्रपाठ भी इसी बात को समर्थन देते है ।

पूज्य गुरुदेवश्री (पं. अभयसागरजी म.) ने एक बार फरमाया था कि 'नियम' का अर्थ सूरिपुरंदर पूज्य हरिभद्रसूरि महाराज ने भी मुहूर्त्त प्रमाण यानि ४८ मिनिट बताया है ।

इस तरह सामायिक की अड़तालीस मिनिट की मर्यादावाली प्रतिज्ञा करने के बाद पूरी सामायिक एक आसन पर बैठकर ही करना है, इससे बैठने के आदेश के लिए खमासमणा देकर आदेश मांगें-

''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! बेसणे संदिसाहुं ?''

अर्थ : हे भगवन् ! आप इच्छापूर्वक बताइए मैं बैठने के लिए आदेश मांगूं ?''

गुरुदेव कहते हैं : **'संदिसह'**

अर्थ : आदेश है ।

'इच्छं' कहकर खड़े होकर खमासमणा देकर आदेश मांगें

''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! बेसणे ठाऊँ ?''

अर्थ : हे भगवन् ! आप इच्छापूर्वक मुझे (बैठक में) स्थित होने का आदेश दें ।

गुरुदेव कहते हैं : **''ठाएह''**

अर्थ : स्थित हों ।

फिर कहें, **''इच्छं''**

सामायिक में मुख्य रुप से तो स्वाध्याय ही करना है । इसका विशाल क्षेत्र है । इसमें दूसरी क्रियाओं का भी समावेश हो जाता है अर्थात् स्वाध्याय का आदेश मांगने में अन्य क्रियाओं के आदेश भी आ जाते हैं । इससे फिर विधिपूर्वक खमासमणा देकर आदेश मांगें।

''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सज्झाय संदिसाहुं ?''

अर्थ : हे भगवन् ! आप इच्छापूर्वक बताइए कि मैं स्वाध्याय के लिए आदेश मांगूं ?''

गुरुदेव कहते हैं, ''संदिसह''

अर्थ : आदेश है ।

फिर विधिपूर्वक खमासमणा देकर बोलें,

''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सज्झाय करुँ ?''

अर्थ : हे भगवन् ! आपकी इच्छा से मैं स्वाध्याय करुँ ?''

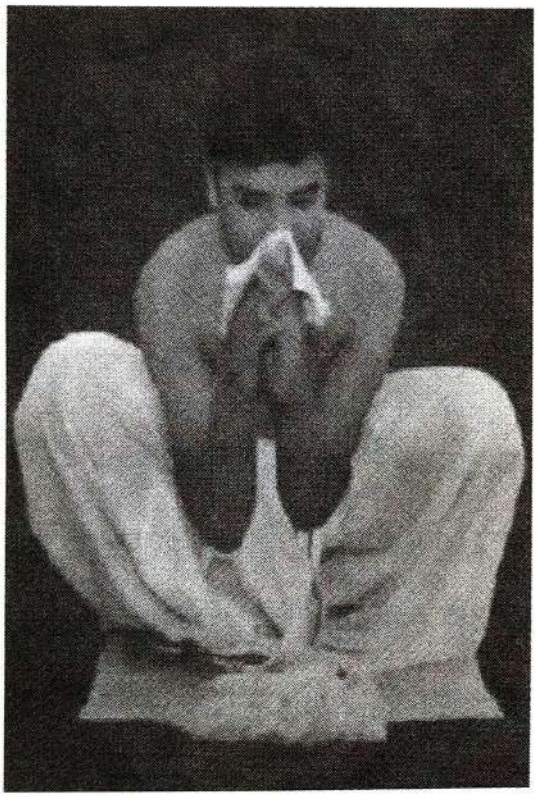
गुरुदेव कहते हैं, ''करेह''

अर्थ : करो । बाद में कहें ''इच्छं ।''

पुरुष गोदोहासन में बैठकर और बहनें खड़े रहकर हाथ जोड़कर स्वाध्याय के प्रतीक के रुप में तीन नवकार गिनें ।

अब ४८ मिनिट तक स्वाध्याय, जाप, ध्यान, कायोत्सर्ग आदि शुभ प्रवृत्ति करें । साथ में उपयोग रखें कि सामायिक में संभवित बत्तीस दोष (जिनका वर्णन

(१३) गोदोहसन मुद्रा



(१४) बहनें खड़े होकर तीन नवकार गिने

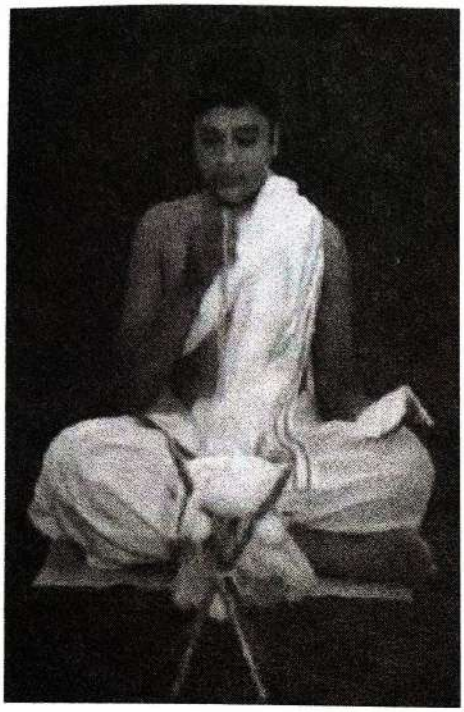


आखरी में दिया गया है) में से कोई दोष या अन्य भी प्रतिज्ञा का खंड़न करने वाले दोष नहीं लगे ।

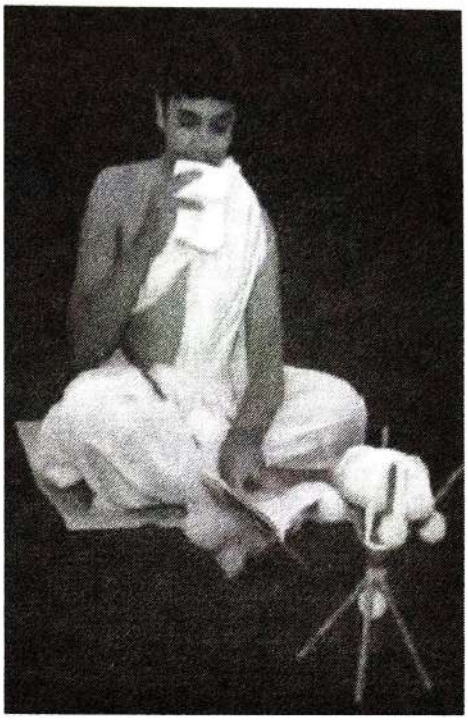
मेरा सामायिक कब खत्म होगा ? इसके लिए पहले से ही घड़ी देख लें । आपको जितना समय सामायिक लेने में लगता है उतना समय भी उस ४८ मिनिट में जोड़ लें ।

वास्तव में तो सामायिक में हमारे द्वारा की जाने वाली प्रवृत्तियाँ इतनी नियंत्रित होनी चाहिए कि उनकी गति से ही ख्याल आ जाए कि मुझे सामायिक लिए कितना समय हुआ ? कितना बाकी रहा ?

माला गिनने की मुद्रा



वांचन / स्वाध्याय करने की मुद्रा



इतना नियंत्रण नहीं हो तो बार-बार घड़ी देखने की आदत भी नहीं रखना चाहिए । संभव हो तो आस-पास वाले व्यक्ति को सूचना कर दें कि: सामायिक का समय हो जाए तो मुझे बता दीजियेगा ।

हाँ, घड़ी पहनकर तो सामायिक होती ही नहीं है, क्योंकि घड़ी में वायुकाय के जीवों की सतत विराधना होती है और घड़ी इलेक्ट्रोनिक हो तो वायुकाय के साथ तेउकाय की भी विराधना होती है । इससे हिंसा का साधन शरीर से दूर ही रखें ।

और आज तो घड़ी समय देखने का साधन कम और श्रृंगार का साधन ज्यादा हो गया है जबकि सामायिक में श्रृंगार वर्ज्य है । इस अपेक्षा से भी सामायिक में घड़ी पास में रखना अनुचित है । स्वाध्याय, जाप, ध्यान, कायोत्सर्ग की प्रवृत्ति करते ४८ मिनिट पूर्ण हुए । चलिए, अब सामायिक पालने की विधि देखे।



५. समझः सामायिक पालने के आदेशों की

खडे होकर खमासमणा दें और इरियावहिया करें । कायोत्सर्ग और प्रगट लोगस्स बोलकर फिर से खमासमणा दें और हाथ जोड़कर आदेश मांगें ।

''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् । मुहपत्ति पड़िलेहुं ?''

गुरुदेव आदेश देंगे : **''पड़िलेहेह ।''**

'इच्छं, कहकर उत्कटिकासन में बैठकर मुहपत्ति का पड़िलेहण करें ।'

खड़े होकर खमासमणा देकर हाथ जोड़कर आदेश मांगें,

''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक पारुँ ?''

गुरुदेव आदेश देंगे, **''पुणविकायव्वो''**

इसका **अर्थ** है : ''भाई ! सामायिक पालने के लिए तैयार तो हो गए हो पर वास्तव में यह आचार बार-बार करने जैसा है ।''

आदेश सुनकर यदि अनुकूलता हो तो गुरुदेव के वचनानुसार पुनः सामायिक लेने का प्रयत्न करें । शक्ति नहीं हो तो विनम्रतापूर्वक कहें, **''यथाशक्ति''.**

खड़े होकर खमासमणा दें और हाथ जोड़कर आदेश मांगें,



''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक पार्युं?''

गुरुदेव फरमाएंगे : **''आयारो ण मोत्तव्वो''**

इसका मतलब है : भाग्यशाली ! जाते हो तो इतना ध्यान रखना कि 'यह आचार छोड़ने जैसा नहीं है ।' गुरुदेव के वचन स्वीकारते हुए बोले, ''तहत्ति''

''आपका कथन एकदम सत्य है ।''

फिर दाँया हाथ चरवले पर स्थापित कर नवकार और 'सामाइय वयजुत्तो' सूत्र का पाठ बोलें । चरवले पर हाथ रखने की रीति तो बाद में शुरु हुई, पूर्वकाल में तो गुरुदेव के चरणों पर ही हाथ लगाने की पद्धति थी । सद्भाव और विनय में कमी आने के कारण दाँया हाथ गुरुचरण पर रखने के बजाय चरवले पर रखने की पद्धति शुरु हुई, ऐसा चिंतकों का कहना है ।

कुछ विचारकों का कहना है कि चरवले पर हाथ-स्थापन की मुद्रा तीन विभिन्न क्रियाएँ करते समय होती है-

१. स्थापना या खामणा करते समय ।

२. आहार संबंधी सिवाय पच्चक्खाण पारते समय ।

३. आहार संबंधी पच्चक्खाण पारते समय ।

तीनों बार हाथ की मुद्रा अलग-अलग प्रकार की होना चाहिए । पहले प्रकार की क्रिया करते समय चरवले पर हथेली खुली रखकर स्थापन करें । दूसरे प्रकार की क्रिया करते समय अंगूठा मुट्ठी से बाहर रखकर हाथ स्थापित करें । तीसरे प्रकार की क्रिया करते समय अंगूठा अंदर रखकर मुट्ठी के रुप में हाथ स्थापित करें ।



सामायिक पारने की क्रिया दूसरे नंबर की क्रिया है इससे दाँए हाथ का अंगूठा बाहर रखकर मुट्ठी मोड़ कर स्थापन कर बाँए हाथ में मुहपत्ति मुंह के आगे रखें । पहले नवकार बाद में **'सामाइय वयजुत्तो'** का पाठ बोलें और अंत में **'दसमन के'** सूत्रवाला पाठ बोलें ।

इसके बाद यदि सामने स्थापनाचार्य हों तो उत्थापन-विधि करने की जरुरत नहीं, पर सामायिक लेने से पहले पुस्तकादि द्वारा स्थापनाजी स्थापित किए हों तो उत्थापन-विधि जरुरी है । विधि इस प्रकार है-

स्थापना करते समय दाँए हाथ की हथेली को स्थापनाजी के सामने रखकर श्री नवकार-पंचिंदिय का पाठ बोले थे । इससे विपरीत हथेली को अपने सामने सीधी रखकर मुहपत्ति को मुँह के आगे रखकर एक नवकार बोलें।

इस मुद्रा से स्थापनाजी में जिस शक्ति का आरोपण किया था उसका विसर्जन होता है । व्यवहार में भी दिखाई देता है कि किसी व्यक्ति को बैठने का कहना हो तो हथेली उस व्यक्ति की ओर रखकर बैठने की मुद्रा करते कहा जाता हैं, बैठ जाइए भाईसाहब, बैठ जाइए' और बैठे हुए को खड़ा करना हो तो उसी हथेली को पलटा कर कहा जाता है, ''खड़े हो जाइए भैया, खड़े हो जाइए । इससे बैठा हुआ व्यक्ति खड़ा हो जाता है । यहाँ स्थापन मुद्रा के द्वारा शक्ति तत्व स्थापनाजी में आरोपित होता है और उत्थापन विधि करने से विसर्जित हो जाता है ।

आपने सामायिक की विधि और उसके रहस्यों को जाना, हृदय में सामायिक की महत्ता अवश्य प्रतिष्ठित हुई होगी ।

सामायिक लेने और पालने की विधि का पाठ पीछे दिया गया है ।

गृही त्रस-स्थावर जंतराशिसु, सदैव तप्तायोगोलकोपमः
सामायिकावस्थित एव निश्चितं, मुहूर्त्तमात्रं भवतीह तत्सखः ।।

त्रस और स्थावर जीवों से परिपूर्ण इस संसार में गृहस्थ का परिभ्रमण तपे हुए अयोगोलक (लोहे के गोले) जैसा है । गृहस्थ जहाँ जाता है वहाँ जीवों का निकंदन निकल जाता है ।

किंतु जब यह गृहस्थ दो घड़ी की सामायिक करता है तब उतने समय के लिए जीव उसके मित्र बन जाते हैं ।

आत्मप्रबोध गाथा-५९



६. सामायिक में त्याज्य बत्तीस दोष

मन से लगनेवाले दस दोष

(१) अविवेक दोष : सामायिक से क्या लाभ मिलेगा ? किसने सामायिक से लाभ पाया होगा ? सामायिक में इस प्रकार के शंकास्पद विचार करना ।

(२) यशोवांछा दोष : सामायिक करने से लोग मुझे अच्छा कहेंगे, मेरी वाह-वाह होगी, ऐसे विचार करना ।

(३) लाभवांछा दोष : मैं सामायिक करुँगा तो इसके प्रभाव से मुझे धन की प्राप्ति होगी, यह विचार करना ।

(४) गर्वदोष : मैं कितने अच्छे तरीके से सामायिक करता हूँ । मुझे लोग धर्मी के रुप में देखते हैं, मैं कितना महान् ! इस प्रकार के अभिमान भरे विचार करने ।

(५) भयदोष : मैं श्रावक कुल में पैदा हुआ हूँ । यदि मैं सामायिक नहीं करुँगा तो लोग मेरी निंदा करेंगे, मेरी बातें करेंगे, इस ड़र से सामायिक करना ।

(६) निदान दोष : सामायिक के फल के रुप में धन, स्त्री, संतानादि प्राप्त करने की इच्छा रखना ।

(७) संशय दोष : अच्छे फल की आशा से सामायिक कर तो रहा हूँ पर इसका फल मिलेगा या नहीं ? ऐसी शंका रखना ।

(८) रोष दोष : क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों में से किसी भी एक कषाय के निमित्त से सामायिक करने बैठना ।

(९) अविनय दोष : परमात्मा, गुरुदेव, सामायिक के उपकरण आदि का अविनय करते हुए सामायिक करना ।

(१०) **अबहुमान दोष** : उंमग, उत्साह और उल्लास भाव के बगैर सामायिक करना ।

वचन से लगनेवाले दस दोष

(१) **कुवचन दोष** : सामायिक में निंदनीय वचन बोलना ।

(२) **सहसात्कार दोष** : बिना विचारे कुछ भी बोल जाना ।

(३) **असदारोपण दोष** : सामायिक में किसी को गलत समझाईश देना ।

(४) **स्वच्छंद दोष** : शास्त्र या आचार की मर्यादा का ख्याल रखे बिना मन में जैसा आए वैसा बोलना ।

(५) **संक्षेप दोष** : सामायिक या अन्य सूत्र बोलते समय बीच में शब्द छूट जाना ।

(६) **कलह दोष** : सामायिक में ऐसे वचन बोलना जिनसे संक्लेश या कलह पैदा हो ।

(७) **विकथा दोष** : राजकथा-देशकथा-स्त्रीकथा-भक्तकथा करना अर्थात् इन चारों विकथाओं संबंधी बातें करना ।

(८) **हास्य दोष** : किसी की मजाक करना या हँसी उड़ाना ।

(९) **अशुद्ध दोष** : सामायिक और स्वाध्याय के सूत्रों का अशुद्ध उच्चारण करना ।

(१०) **मुणमुण दोष** : इसका एक अर्थ है कि सूत्र बोलते गड़बड़ी करना और दूसरा अर्थ है कि जो सामायिक में नहीं हो उसे आने-जाने की आज्ञा करना ।

काया से लगनेवाले बारह दोष

(१) **अयोग्यासन दोष** : पैर पर पैर चढ़ाकर बैठना अविनय है, ऐसे आसन में बैठना ।

(२) **चलासन दोष** : ऐसे स्थान पर बैठना जो स्थिर न हो, ड़ग-मग होता हो या बार-बार जहाँ से उठना पड़े ऐसे स्थान पर बैठना ।

(३) **चलदृष्टि दोष** : सामायिक में कायोत्सर्गादि क्रिया करते दृष्टि इधर-

उधर घुमाना ।

(४) **सावद्य-क्रिया दोष :** सामायिक में नहीं करने योग्य पाप-क्रिया करना या किसी को पापक्रिया के लिए संज्ञा-संकेतादि करना ।

(५) **आलंबन दोष :** दीवार का सहारा लेकर बैठना ।

(६) **आकुंचन-प्रसारण दोष :** हाथ-पैर को बार-बार सिकोड़ना या फैलाना ।

(७) **आलस दोष :** आलस मरोड़ना या उबासियाँ खाना ।

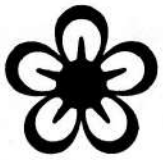
(८) **मोटन दोष :** अंगुली, गरदन, पीठ या पैर चिटकाना ।

(९) **मलदोष :** शरीर को खुजलाते रहना या शरीर पर लगे मैल को दूर करने की कोशिश करना ।

(१०) **विमासण दोष :** हाथ को गले पर लिपटा कर बैठना ।

(११) **निद्रादोष :** सामायिक में नींद लेना ।

इस प्रकार मन-वचन-काया के कुल ३२ दोषों में से एक भी दोष न लगे, ऐसी सामायिक करने का सत्प्रयास करें ।



श्री सामायिक ना प्रसाद थी,
लहीए अमर विमान लाल रे,
धर्मसिंह मुनि इम भणे,
ए छे मुक्ति निदान लाल रे ।।



७. सामायिक-विधि में उपयोगी सूत्र

विवरण में बताई गई तमाम प्रकार की उपधि=सामग्री पास में रखकर पूंजकर कटासना बिछा कर पूज्य गुरुदेव श्री हो तो विधि-सहित वंदन करके कटासने पर बैठें ।

मुहपत्ति बाँए हाथ में स्थापना के सम्मुख रखें

◆ दाँया हाथ उल्टा करके स्थापना के सम्मुख रखकर

एक नवकार और पंचेन्द्रिय सूत्र बोलकर स्थापनाजी स्थापे

नवकार (नमस्कार) सूत्र

।। णमो अरिहंताणं ।।
।। णमो सिद्धाणं ।।
।। णमो आयरियाणं ।।
।। णमो उवज्झायाणं ।।
।। णमो लोए सव्वसाहूणं ।।
।। एसो पंच णमुक्कारो,
सव्व पावप्पणासणो !
मंगलाणं च सव्वेसिं;
पढ़मं हवइ मंगलं ।।

'पंचिंदिय सूत्र-गुरु गुण स्मरण'

पंचिंदिय संवरणो, तह नवविह बंभचेर गुत्तिधरो,
चउविह कसाय मुक्को, इअ अट्ठारस गुणेहिं संजुत्तो ।।१।।

पंच महव्वयजुत्तो, पंच विहायार पालणसमत्थो,
पंच समिओ तिगुत्तो, छत्तीस गुणो गुरु मज्झ ।।२।।

पू. गुरु भगवंत के स्थापनाचार्यजी के सामने स्थापना नहीं करनी हो तब खमासमणे से विधि शरु करें.

'इच्छामि खमासमणो' प्रणिपात सूत्र

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं जावणिज्जाए
निसीहिआए, मत्थएण वंदामि ।
फिर खड़े होकर इरियावही, तस्स उत्तरी, अन्नत्थ बोलना है

इरियावहियं सूत्र

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् !
इरियावहियं पड़िक्कमामि ? इच्छं
इच्छामि पड़िक्कमिउं ।।१।।
इरियावहियाए विराहणाए ।।२।।
गमणागमणे ।।३।।
पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे,
ओसा-उत्तिंग-पणग-दग-मट्टी-मक्कड़ासंताणा संकमणे ।।४।।
जे मे जीवा विराहिया ।।५।।
एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया ।।६।।
अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं संकामिया जीवियाओ ववरोविया, तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं ।।७।।

तस्स उत्तरी सूत्र

तस्स उत्तरी करणेणं, पायच्छित्तकरणेणं, विसोही करणेणं विसल्ली करणेणं पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए, ठामि काउसग्गं ।

'अन्नत्थ ऊससिएणं'

अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलीए, पित्तमुच्छाए ।।१।।
सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं, खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं

दिट्ठिसंचालेहिं ।।२।।

एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो, अविराहिओ, हुज्ज मे काउसग्गो ।।३।।

जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, नमुक्कारेणं न पारेमि ।।४।।

ताव कायं, ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि ।।५।।

एक **'लोगस्स'** का **'चंदेसु निम्मलयरा'** पद तक (लोगस्स नहीं आए तो चार नवकार) का कायोत्सर्ग करें यानि लोगस्स के पच्चीस पद 'चंदेसु निम्मलयरा' तक मन में बोलें ।

''लोगस्स'' सूत्र-नामस्तव

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्म तित्थयरे जिणे,
अरिहंते कित्तइस्सं, चउव्वीसं पि केवली ।।१।।

उसभमजिअं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च,
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ।।२।।

सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल-सिज्जंस-वासुपुज्जं च
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ।।३।।

कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च,
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ।।४।।

एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा,
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ।।५।।

कित्तिय वंदिय महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा,
आरुग्ग बोहिलाभं, समाहिवर मुत्तमं दिंतु ।।६।।

चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा,
सागरवर गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।।७।।

१) कायोत्सर्ग पूर्ण होने पर **'णमो अरिहंताणं'** पद कहकर कायोत्सर्ग पारें । २) कायोत्सर्ग पारने के बाद संपूर्ण लोगस्स यानि **'सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु'** तक का पाठ उच्चारणपूर्वक बोलें । इसके बाद १ खमासमणा दें मुहपत्ति

पड़िलेहन के लिए सद्गुरु की आज्ञा इस प्रकार मांगें, **''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक मुहपत्ति पड़िलेहुँ ?''** गुरु भगवंत कहते हैं, **'पड़िलेहेह'** गुरु भगवंत नहीं हों तो आज्ञा मिली है ऐसा समझकर **'इच्छं'** बोलें । **उत्कटिकासन** में बैठकर पचास बोल के चिंतन के साथ मुहपत्ति-पड़िलेहन करें ।

मुहपत्ति के पचास-बोल

१. सूत्र, अर्थ तत्त्व करी सद्दहुं.

२. सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय परिहरुँ.

३. कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग परिहरुँ.

४. सुदेव, सुगुरु, सुधर्म आदरुँ.

५. कुदेव, कुगुरु, कुधर्म परिहरुँ

६. ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदरुँ.

७. ज्ञान विराधना, दर्शन विराधना, चारित्र विराधना परिहरुँ.

८. मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, आदरुँ.

९. मनदंड़, वचनदंड़, कायदंड़ परिहरुँ.

१०. हास्य, रति, अरति, परिहरुँ.

११. भय, शोक, दुर्गंछा परिहरुँ.

◆ १२. कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या परिहरुँ.

१३. रसगारव, ऋद्धि गारव, शातागारव परिहरुँ.

◆ १४. माया शल्य; नियाण शल्य; मिथ्यात्व शल्य परिहरुँ.

◆ १५. क्रोध, मान परिहरुँ.

◆ १६. माया, लोभ परिहरुँ.

१७. पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय की जयणा करुँ.

१८. वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय की रक्षा करुँ.

निशानवाले कुल १० (३ + ३ + २ + २) बोल श्राविकाओं को नहीं बोलना है । उन्हें ४० बोल बोलना है ।

१) मुहपत्ति पड़िलेहन कर खड़े हो जाएँ २. खमासमणा देकर आज्ञा मांगें, **''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक संदिसाहुं ?** ३. (गुरु कहेंगे, **''संदिसह''** गुरु नहीं हों तो आदेश मिला है, ऐसा मानकर) बोलें, **''इच्छं''** ४) खमासमणा देकर आज्ञा मांगे. **''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक ठाऊं ?''** (गुरु कहते हैं, **''ठाएह''**) फिर 'इच्छं' कहकर (६) अंजलि कर-हाथ जोड़कर नतमस्तक होकर एक नवकार का स्मरण करें, फिर जोर से बोलें, **''इच्छकारि भगवन् ! पसाय करी सामायिक दंड़क उच्चरावोजी''** गुरुदेव या कोई सामायिक लिये हुए सज्जन हो तो उनसे **''करेमि भंते''** सूत्र उच्चरें ।

''करेमि भंते'' सूत्र-सामायिक सूत्र

करेमि भंते ! सामाइयं ! सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावनियमं पज्जुवासामि,

दुविहं, तिविहेणं, मणेणं, वायाए, कारणं, न करेमि, न कारवेमि, तस्स भंते ! पड़िक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।।

सामायिक सूत्र का पाठ उच्चर कर १) **खमासमणा** देकर गुर्वाज्ञा मांगें २) **इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! बेसणे संदिसाहुं ?** ३) गुरु आज्ञा दें या मिली है ऐसा मानकर **'इच्छं'** कहें ४) खमासमणा देकर **'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! बेसणे ठाउं ?'** ५) **इच्छं** कहकर ६) खमासमणा देकर **''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सज्झाय संदिसाहुं ?''** ७) फिर **'इच्छं'** कहकर खमासमणा देकर आज्ञा मांगें, **''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सज्झाय करुँ ?''** फिर ८) **'इच्छं'** कहकर पुरुषवर्ग उत्कटिकासन में और बहनें खड़े होकर हाथ जोड़कर तीन नवकार गिनें ।

इस दो घड़ी की सामायिक में शास्त्र या अच्छी धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन, नवकारवाली, स्वाध्याय, जाप, कायोत्सर्ग आदि करें और विकथादि प्रमाद आदि नहीं करें । दो घड़ी=४८ मिनिट बाद सामायिक पारना हो तो

सामायिक पारने की विधि

१) खमासमणा दें २) इरियावही करें ३) कायोत्सर्ग करें ४) उच्चारपूर्वक

लोगस्स बोलें (यहाँ तक लेने पारने की विधि समान है ।) ५) खमासमणा दें ६) मुहपत्ति-पड़िलेहन के लिए आज्ञा मांगें, **''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! मुहपत्ति पड़िलेहुं ?'' ''इच्छं''** कहकर ५० बोल से मुहपत्ति का पड़िलेहन करें. ७) खमासमणा दें. ८) आज्ञा मांगें-**''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक पारुँ ?''** ९) गुरुदेव **'पुणविकायव्वो'** कहें तब **'यथाशक्ति'** कहें । १०) खमासमणा दें. ११) **''इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक पार्युं ?''** ऐसा कहकर आज्ञा लें. १२) गुरुदेव कहें **'आयारो ण मोत्तव्वो'** तब **'तहत्ति'** कहें । १३) दाँया हाथ चरवले या कटासने पर स्थापकर एक नवकार गिनें । १४) इसके बाद **'सामाइय वयजुत्तो'** का पाठ कहें ।

सामाइय वयजुत्तो (सामायिक पारने का सूत्र)

सामाइय वयजुत्तो, जाव मणे होइ नियमसंजुत्तो ।
छिन्नइ असुहं कम्मं, सामाइअ जत्तिआ वारा ।।१।।

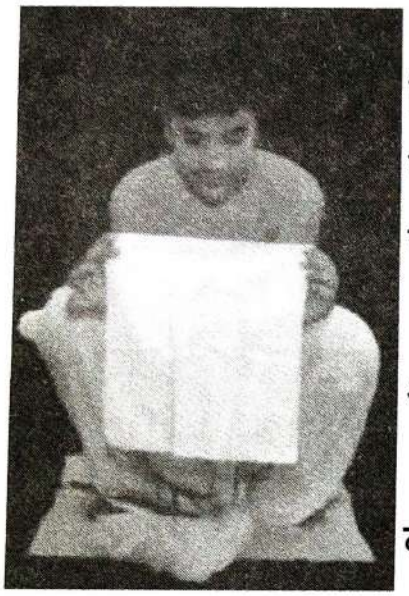
सामाइअंमि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा,
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइअं कुज्जा ।।२।।

सामायिक विधि से लिया, विधि से पार्या, विधि करते समय जो भी अविधि हुई हो, वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कड़ं ।

दस मन के, दास वचन के, बारह काया के इन बत्तीस दोषों में से जो कोई दोष लगा हो, वह सब मन, वचन काया से मिच्छामि दुक्कड़ं ।



८. मुहपत्ति के बोल खोले कर्म की पोल



सूत्र

मुहपत्ति आत्मा का प्रतीक है । आत्मा स्वच्छ, निर्मल और सात्विक है इससे उसका वर्ण सफेद माना गया है । आत्मा के उद्धार के लिए जिनशासन का स्वीकार आवश्यक है ।

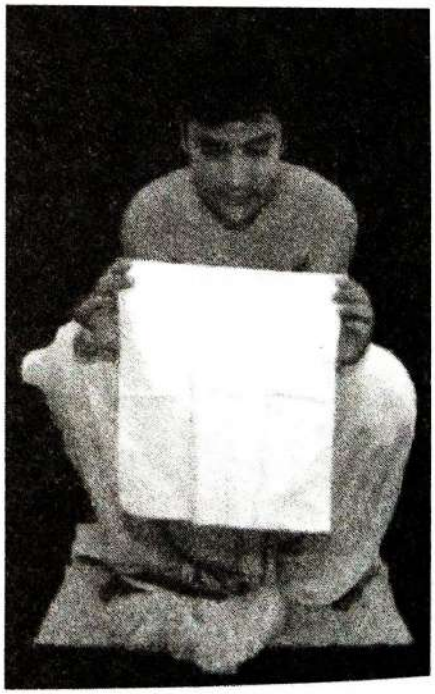
जिनशासन का सार द्वादशांगी है और वह सूत्र-अर्थात्मक है इससे उसका भी स्वीकार हो ही गया । इसके प्रतीक के रुप में सर्वप्रथम मुहपत्ति खोलें और बंधी किनारवाले दोनों सिरों को इस तरह पकड़ें कि दोनों सिरों को सीने की ओर मोड़ कर इकट्ठा किया जाए तो मुहपत्ति की तह जो बीच में से की गई है वो हो जाए । इस तरह पकड़कर बोलें, **''सूत्र''** फिर मुहपत्ति को पलटकर इसी तरह पकड़ रखकर मुहपत्ति हृदय के नजदीक लाकर बोलें,

''अर्थ-तत्वकरी सद्दहुं''

यानि कि परमात्मा की वाणी जो सूत्र, अर्थ स्वरुप है उसे तत्व यानि सत्य के रुप में श्रद्धा/ स्वीकार करता हूँ / पर यह बात कब बनेगी ?

जब दर्शन-मोहनीय कर्म दूर हो तब

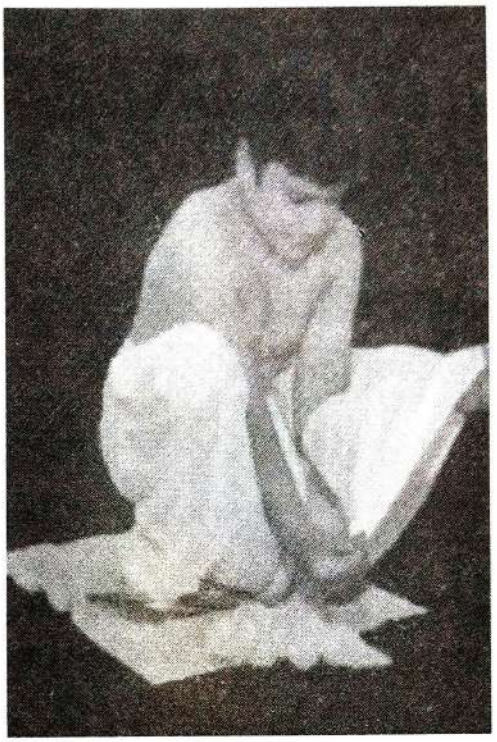
इसलिए मुहपत्ति जो दोनों हाथ में पकड़ रखी है, उसमें बाँए हाथ में रहे हुए सिरे को इसी तरह पकड़ रखें और दाँए हाथ के सिरे को सीधे



(२०)

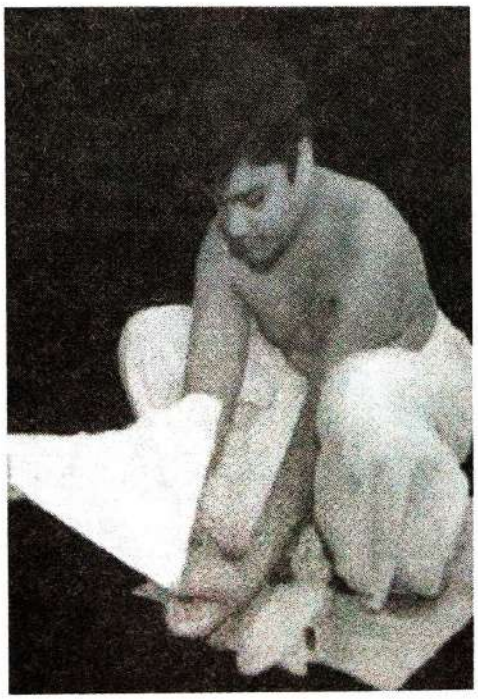
'अर्थ तत्त्वकारी सद्दहुं'

रखे बाँए हथेली पर ड़ाल दें फिर हाथ की दाँई ओर लटकते सिरे को दाँए हाथ से पकड़कर जरा सा खंखेरते हुए बोलें।



सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय परिहरुँ

यानि कि सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय का परिहार करता हूँ, त्याग करता हूँ, परंतु इसकी शर्त यह है कि राग को खत्म करना होगा । राग को सलामत रखकर दर्शन मोहनीय का नाश करना आग जलती रखकर पानी ठंड़ा करने के बराबर है यानि राग को खंखेरने के लिए मुहपत्ति को घुमाते हैं । अब दाँए हाथ में जो लटकता हुआ सिरा पकड़ा है उसे बराबर पकड़ रखकर मुहपत्ति को सीधे रखे दाँए हाथ में जो लटकता हुआ सिरा पकड़ा है उसे बराबर पकड़ रखकर मुहपत्ति को सीधे रखे दाँए हाथ में जो लटकता हुआ सिरा पकड़ा है उसे बराबर पकड़ रखकर मुहपत्ति को सीधे रखे दाँए हाथ पर उसी तरह रखें जिस तरह बाँए हाथ पर रखी थी । अब बाँए हाथ पर लटकते सिरे को बाँए हाथ से खंखेरते हुए बोलें-

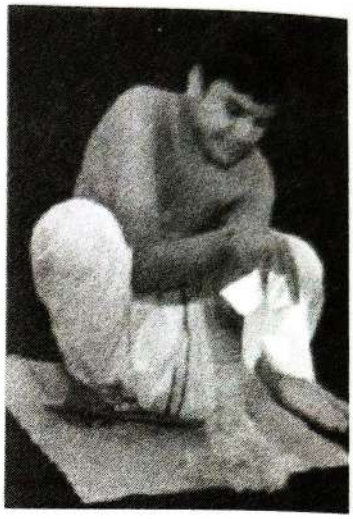


कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग परिहरुँ

कामराग, स्नेहराग और दृष्टिराग इन तीनों प्रकार के रागों को मैं छोड़ता हूँ । इन रागों को छोड़ना आसान काम नहीं है, इसके लिए जिन्होंने राग छोड़ा है उनका सत्संग करना चाहिए । सत्संग किसका करना ? इसके लिए मुहपत्ति की बीच में से तह कर दें अब वह लंबचौरस हो गई । मुहपत्ति को

दाँए हाथ की पाँचों अंगुलियों के बीच फँसाकर घूंघटाकार बनाएँ फिर बाँए हाथ को सीधा रखकर हथेली से कोहनी की ओर मुहपत्ति को तीन बार रुकते हुए और हाथ को छुआए बगैर ले जाते हुए बोलें ।

सुदेव-सुगुरु-सुधर्म आदरुँ



पहली बार रुककर सुदेव दुसरी बार रुककर सुगुरु, तीसरी बार रुककर सुधर्म और हृदय के पास ले जाकर आदरुँ, बोलें ।

सत्संग के लिए ये तीनों तत्व श्रेष्ठ हैं, इससे इन तीनों को मैं स्वीकारता हूँ । इन तीनों तत्वों को हृदय में बिराजमान करने हैं, हृदय बाँई ओर है और स्वीकार के लिए हाथ का उपयोग जरुरी माना जाता है इससे हाथ द्वारा हृदय में स्थापन करने की यह अद्‌भुत प्रक्रिया है । हाथ पर मुहपत्ति नहीं छुआने का कारण यह है कि ये परम तत्व स्वीकारणीय तत्व हैं । बहुमाननीय तत्वों के साथ कोमलता और विनम्रतापूर्ण व्यवहार होना चाहिए ।

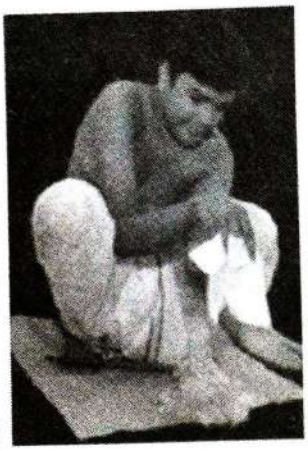
हम व्यवहार में भी देखते हैं कि छोटे बालकों को, काँच के कीमती बर्तनों को, मनपसंद वस्तु को हम सहेज कर रखते हैं, सावधानी और नाजुकता से उनका उपयोग करते हैं । सुदेव, सुगुरु, सुधर्म तो अत्यंत मूल्यवान हैं । उनके प्रति के व्यवहार में कोमलता रखने के लिए मुहपत्ति को हाथ पर घिसते-घिसते नहीं पर थोड़ा ऊँचा रखकर हृदय के तरफ लाना ।

अब सुदेव-सुगुरु-सुधर्म को हृदय में स्थान तभी मिल सकता है जब अनादि के संस्कार-वश हृदय में बस चुके कुदेव-कुगुरु-कुधर्म बाहर निकले, इसके लिए तीन बोल बोलने हैं । सुदेवादि के बोल के लिए हाथ से हृदय की ओर मुहपत्ति ले गए थे । कुदेवादि के लिए हृदय से हाथ की ओर तीन बार में हाथ पर मुहपत्ति घिसते-घिसते बोलना है।

कुदेव-कुगुरु-कुधर्म परिहरुँ

पहली बार कुदेव, दूसरी बार कुगुरु, तीसरी बार कुधर्म बोलकर मुहपत्ति

खंखेरते हुए बोलें, परिहरुँ ।



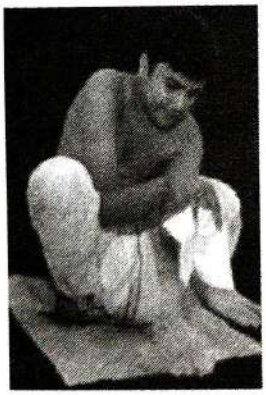
यहाँ मुहपत्ति को घिसकर इसलिए कि तीनों तत्व आत्मा को उन्मार्ग पर ले जाने वाले होने से कचरे के समान है । घर में से जैसे कचरा निकालते हैं तो संजवारी (बुहारी/झाड़ू) से बराबर घिसकर निकालते हैं । ऐसा यहाँ भी समझना है ।

इन तीनों कुतत्वों का बहिष्कार तब ही हो सकता है जब हममें ज्ञान-दर्शन-चारित्र बखूबी समाहित हों यानि हृदय में ज्ञान-दर्शन-चारित्र की स्थापना भी जरुरी है । जिस प्रकार सुदेवादि बोल बोलते समय मुहपत्ति हथेली से हृदय की ओर ले गए थे उसी तरह अब भी ले जाना है और बोलना है ।

ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदरुँ



लेकिन जब तक ज्ञान-दर्शन-चारित्र के प्रति विराधना स्वरुप अनादर हो तब तक इन तीनों का आगमन असंभव है । शैतान की हाजिरी में फरिश्ते का प्रवेश कैसे हो ? पहले शैतान को बाहर निकालना पड़ता है तब फरिश्ता आ पाता है । विराधना रुपी शैतान को बाहर निकालने के लिए तीन बोल बोलकर उसी तरह क्रिया करना है जैसे कुदेवादि बोल बोलते की थी ।



ज्ञानविराधना-दर्शनविराधना-चारित्र विराधना परिहरुँ

इन तीनों विराधनाओं से बचने के लिए मन, वचन और काया पर नियंत्रण जरुरी है और यह नियंत्रण ग्रहण करने योग्य होने से हथेली से हृदय की ओर जाते हुए बोलने हैं ।

मन गुप्ति-वचन गुप्ति-काय गुप्ति आदरुँ

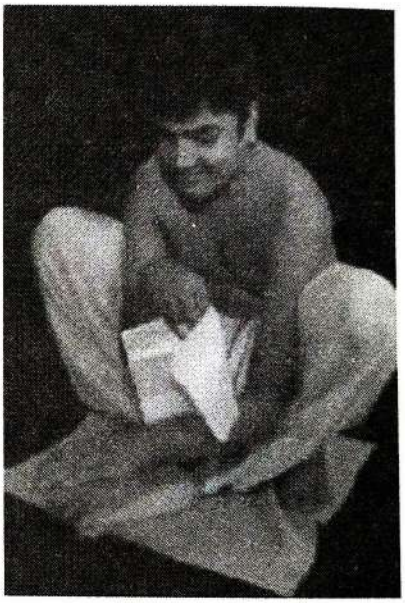


यानि मन, वचन और काया तीनों का नियंत्रण स्वीकार करता हूँ । जब तक मन, वचन और काया के अनादिकाल के संस्कार वश होनेवाले आक्रमण दंड़ को दूर नहीं किया जाए तब तक नियंत्रण सुलभ नहीं है । इस आक्रमण स्वरुप दंड़ करने के लिए नीचे के बोल बोलने हैं-

मन दंड़-वचनदंड़-कायदंड़-परिहरुँ

मन के दंड़, वचन के दंड़ और काया के दंड़ को छोड़ता हूँ । सामने रहकर वार करनेवाले दुश्मन की अपेक्षा पीठ पीछे से वार करनेवाला दुश्मन ज्यादा खतरनाक होती है । गरम युद्ध के बजाए शीत युद्ध ज्यादा भयंकर होता है । कड़वे जहर से मीठा जहर ज्यादा खतरनाक होता है । इससे ही कर्म की कुछ प्रकृतियों को 'नोकषाय' माना जाता है । इसका स्वरुप कषाय जैसा नहीं बल्कि अच्छा है लेकिन इसका स्वभाव कषाय से ज्यादा खतरनाक है । इन नोकषाय में हास्य, रति=आनंद अरति=शोक है । ये पीछे से वार करनेवाले हैं इसके लिए इन्हें बोलते समय हाथ को उल्टा कर अंदर से बाहर निकालने के आशय से मुहपत्ति को तीन बार घिसते हुए बोलना है।

हास्य, रति, अरति, परिहरुँ



अर्थात् हँसने की प्रवृत्ति मनचाहा मिलने पर आनंद मनाने की प्रवृत्ति और नापसंद वस्तु मिलने पर शोक करने की प्रवृत्ति का वर्जन करता हूँ ।

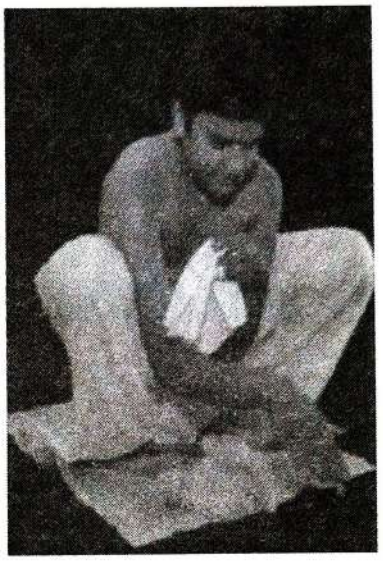
परंतु यह सब अपने भीतर में रही हुई नि:सत्त्वता को दूर किए बिना या सत्व को जागृत किए बिना असंभव है । हम नि:सत्त्व होने के कारण ड़रपोक बन गए हैं । भय को दूर करने के लिए सत्व को जगाने की जरुरत है और सत्व का निवास दाँए हाथ में है । दाँया अंग सत्व का अंग माना जाता है ।

कोई किसी का खास हो तो कहा जाता है कि भाई ! यह तो इसका दाँया हाथ, राईट हेण्ड़ है यानि शक्तिशाली व्यक्ति है । शक्ति और सत्व का स्थल सीधा हाथ है । सत्व जागृत करने के बोल दाँए हाथ पर बोलने हैं इसलिए अब मुहपत्ति जिस तरह दाँए हाथ में पकड़ी थी उसी तरह बाँए हाथ में पकड़े और उसे दाँए हाथ पर छाती से हथेली की ओर जाने दें परंतु जब मुहपत्ति हथेली तक पहुँच जाए तब दाँया हाथ सीधे से उल्टा कर दें मतलब मुहपत्ति के बोल की शरुआत हो तब हाथ सीधा और तीनों बोल पूरे हो जाएँ और **'परिहरुं'** शब्द आए तब हाथ

उलट दें । बोल हैं-

भय-शोक-दुगंछा परिहरुँ

यानि भय-निःसत्वता, शोक और दुर्गंछा=जुगुप्सा, घृणा का त्याग करता हूँ । यहाँ तक तो मुहपत्ति ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर फिराने की विधि की । इसमें स्वीकार और त्याग की सक्रियता देखी । इसका दूसरा आशय यह भी है कि सूती मुहपत्ति का इस तरह हाथ पर उतार-चढ़ाव होने से उसका असर नसों में बहते खून पर होता है । इन बोलों को मंत्रतुल्य समझना, इन मंत्रों के साथ मुहपत्ति का संबंध हमारे खून को शुद्ध करने का भी काम करता है ।



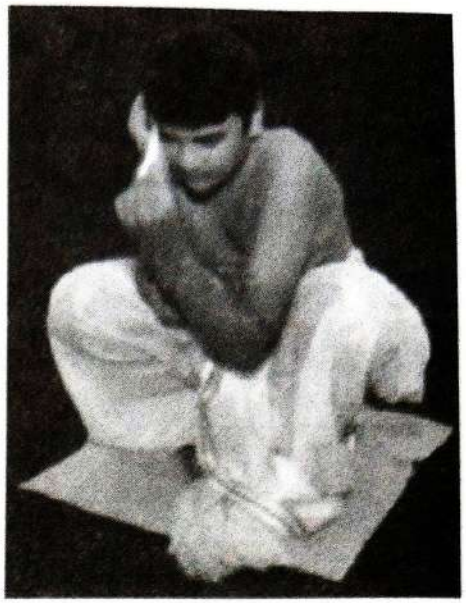
मुहपत्ति के सूती तंतुओं का भी विशेष प्रभाव होता है, मेरा अपना एक अनुभव सुनाऊँ-एक बार विहार में थे । पड़ाव जंगल में था । मुझे जोरदार बुखार आया । मेरी वर्धमान तप की ओली चल रही थी, इससे दवा लेने की शक्यता ही नहीं थी । तब वहां रहनेवाला एक ग्रामीण भाई एक बिना धोया नया सूती कपड़ा लाया । कपड़े के दो टुकड़े करके मेरी हथेली पर ऊपर से नीचे घिसने लगा । बुखार धीरे-धीरे उतर गया । तब मुझे विचार आया कि हो सकता है, सूती कपड़े के ऐसे ही किसी प्रभाव के कारण ही महापुरुषों ने मुहपत्ति के बोल की ऐसी पद्धति बताई हो । यह तो निःशंक तथ्य है कि जिनशासन में कोई भी क्रिया-प्रक्रिया ऐसे ही नहीं बताई गई है । मुहपत्ति के पड़िलेहन में भी ऐसे कितने ही अगम्य रहस्य होंगे ही ।

अब तक हमने ३१ बोल समझे अब आगे बढ़ते हैं । अब मुहपत्ति को बीच में से तह की हुई ही रहने दें और तह के दोनों सिरों को दाँए और बाँए हाथ से मस्तक को छुआएँ । इसलिए कि हमें विचार-शुद्धि करना है । इस विचार को जैन परिभाषा में लेश्या कहा जाता है, ये छः हैं । विचारों का वर्गीकरण किया

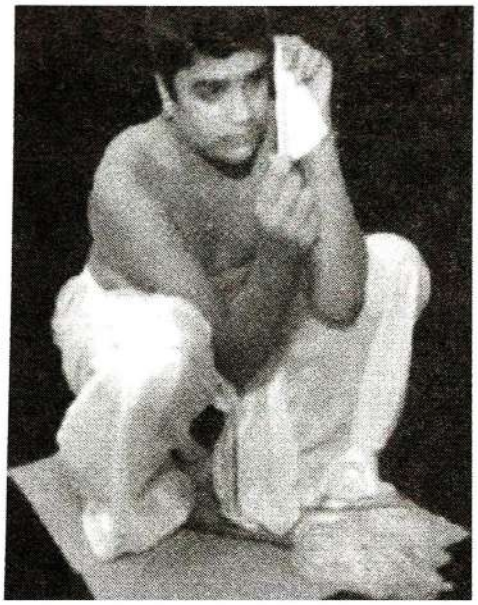
अर्थ : रसकी आसाक्ति, ऋद्धि की आसक्ति और शाता की आसक्ति



प्रथम कपाळ पर दोनों हाथ से
मुहपत्ति अड़ाकर बोलना-*कृष्णलेश्या*



मस्तककी दाहिनी बाजु की पर
मुहपत्ति अड़ाकर बोलना-*नीललेश्या*



मस्तककी बाई बाजु पर मुहपत्ति अड़ाकर बोलना *कापोतलेश्या* परिहरुं ।

जाए तो छह वर्ग होते हैं, इससे लेश्या भी छह प्रकार की हैं । शुक्ललेश्या, पद्मलेश्या, तेजोलेश्या, कापोतलेश्या, नीललेश्या और कृष्णलेश्या ।

इनमें से अंतिम तीन खतरनाक हैं, इन्हें दूर करना जरुरी हैं । इनका स्थान मस्तक है इससे मस्तक पर मुहपत्ति छुआकर कुलेश्या दूर करने का संकल्प इस प्रकार करें । पहले कपाल पर दोनों हाथ से मुहपत्ति छुआते हुए बोलें **कृष्ण लेश्या,** फिर मस्तक के दाँए भाग पर मुहपत्ति छुआते हुए बोले **नीललेश्या** और बाँए हिस्से पर छुआकर बोलें **कापोतलेश्या** सामने रखकर खंखेरते हुए बोलें **परिहरुँ.**

मुंह के उपर
लाते समय रसगारव...



दाहिने गाल छुआते
समय ऋद्धिगारव



बाँए गाल से छुआते समय
सायागारव...परिहरुं !



अर्थ : भयंकरतम विचार-भयंकरतर विचार और भयंकर विचारों का त्याग करता हूँ । इसके बाद तीन गारव रसगृद्धि=आसक्ति को भी दूर करना है । इसमें पहली से रसगृद्धि=खाने की आसक्ति, इसका स्थान है मुँह । दूसरी शुद्धि है **ऋद्धि** । ऋद्धि यानि संपत्ति, इसकी आसक्ति का स्थान है गाल । संपत्ति-मान् व्यक्ति की पहचान उसके लाल-लाल गाल से होती है । किसी भिखारी के गाल लाल-लाल नहीं दिखाई देते और तीसरी गृद्धि है शाता=शरीर की सुखशीलता, शारीरिक सौंदर्य, इसका स्थान भी गाल है । सौंदर्यशाली व्यक्ति का चेहरा लाल गालों से दमकता है । अपने सौंदर्य को दिखाने के लिए व्यक्ति लाल गाल दिखाता है । गाल कुदरती लाल न हो तो कृत्रिमता का जामा चढ़ाकर भी गाल लाल करने का प्रयास होता है ।

तीनों प्रकार की आसक्ति आत्मा को दुर्गति में ले जानेवाली हैं इससे इन्हें दूर करना जरुरी हैं, इसके बोल इस प्रकार बोलें ।

मुहपत्ति को उसी तरह पकड़े रहें, मुँह पर लगाते हुए **रसगारव,** दाँए गाल पर छुआते हुए **ऋद्धि गारव,** बाँए गाल पर छुआते हुए **साया गारव,** सामने रखकर खंखेरते हुए बोलें-**परिहरुँ** ।



छाती के मध्य भाग मे मुहपत्ति के अडाते हुए बोलना मायाशल्य...



छाती के दाहिने भाग पर मुहपत्ति को अडाते हुए बोलना नियाणशल्य...

का त्याग करता हूँ ।

अर्थ : रसकी आसाकित, ऋद्धि की आसकित और शाता की आसकित का त्याग करता हूँ।

जिनशासन की आराधना शल्यरहित बनकर करना है । शल्य यानि कांटा, पैर में कांटा लगने पर ठीक से चला नहीं जाता, वैसे ही आराधना में कोई शल्य हो तो वह भी बराबर परिणाम नहीं दे सकती । शल्य तीन हैं माया शल्य=आराधना दंभ से करना, मन में कपट रखकर करना । नियाण (निदान) शल्य=आराधना के पीछे सांसारिक कामना रखना । मिथ्यात्व शल्य=अश्रद्धा से आराधना करना ।

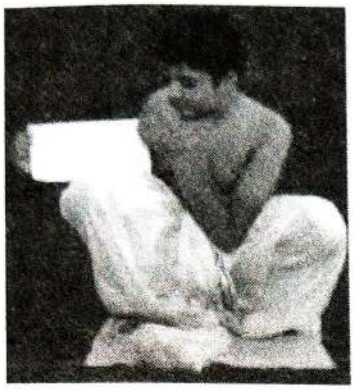


छाती के बाएँ भाग पर मुहपत्ति को अड़ाते हुए बोलना- मिथ्यात्वशल्य परिहरुँ

शल्य सहित की गई आराधना निष्फल होती है, इससे इन तीनों को दूर करना चाहिए । छाती के मध्य भाग पर मुहपत्ति छुआते हुए **माया शल्य,** छाती के दाँए भाग पर छुआते हुए **नियाण शल्य** और छाती के बांए भाग पर छुआते हुए **मिथ्यात्व शल्य** और खंखेरते हुए **परिहरुँ** बोले ।

अर्थ : माया रुपी शल्य, कामना रुपी शल्य और अश्रद्धा रुपी शल्य का

क्रोध



मान-परिहरुँ

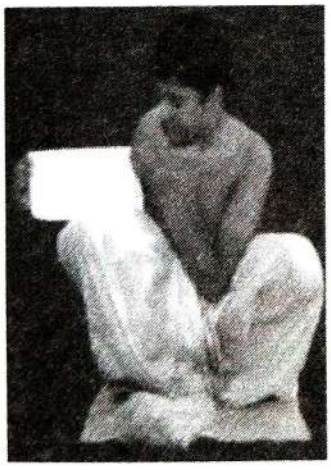


त्याग करता हूँ ।

इनमें महत्वपूर्ण शल्य है माया और माया का स्थान है छाती का भाग । भाषाप्रयोग भी ऐसा सुना जाता है कि यह तो मायावी है, इसकी छाती में बाल ही नहीं है । यानि माया का स्थान छाती में हैं ।

शल्य दूर करने के लिए कषाय दूर होना भी बहुत जरुरी है । कषाय के ह्रास पर तो आत्मा का विकास निर्भर है । कषाय को जताने वाले स्थान भी निश्चित हैं । क्रोध-मान दोनों कषायों का स्थान दोनों कंधे हैं । छोटे बच्चे को नापसंद के लिए जबर्दस्ती की जाए तो वह क्रोध में आकर कंधे ऊँचे नीचे करता है और अपनी नाराजगी व्यक्त करता है।

माया



जब किसी को अभिमान परेशान करता है तो वह सामने वाले पर अभिमान जताने के लिए कंधे पर हाथ पछाड़ता है ।

लोभ - परिहरुँ



माया का स्वरुप ही शर्मालु होता है । माया छुप कर होती है छूपाने के लिए बगल का उपयोग होता है मायावी धर्मी मनुष्य का परिचय 'मुंह में राम बगल में छुरी' कहावत से दिया जाता है । चौथे लोभ के लिए

भी बगल का उपयोग होता है । आपके पास कोई वस्तु हो और किसी को देने की इच्छा नहीं हो तो उसे बगल में दबा लिया जाता है, इससे लोभ का स्थान भी बगल है । मुहपत्ति वैसी की वैसी पकड़ी रखें और

दाँए कंधे पर छुआकर-**क्रोध**

बाँए कंधे पर छुआकर-**मान**

सामने लाकर खंखेरते हुए-**परिहरुँ**

दाँयी बगल पर छुआते हुए-**माया**

बाँई बगल पर छुआते हुए-**लोभ**

सामने लाकर खंखेतरे हुए-**परिहरुँ**

अर्थ : क्रोध, मान, माया, लोभ का परिहार करता हूँ ।

यहाँ तक चुम्मालीस (चवालीस) बोल हुए । अब मुहपत्ति की पहले की तरह पूरी तह कर लें ।

चरवले से दाँया धोडा पूंजते हुए कहें,

पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय की जयणा करुँ ।

'जयणा' शब्द इसलिए बोलना है, क्योंकि श्रावक गृहस्थ है । आरंभ समारंभ छोड़ नहीं सकता, इससे स्थावर काय की रक्षा तो नहीं कर सकता अतः बचाने के यथाशक्य प्रयत्न की प्रतिज्ञा करने के लिए 'जयणा' शब्द बोलना है ।

अब बाँए पैर की चरवले से प्रमार्जना करते समय **वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय की रक्षा करुँ** बोले ।

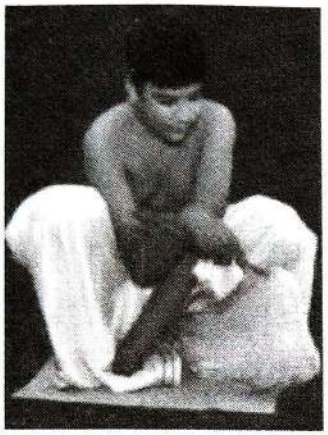


श्रावक भले गृहस्थ है पर त्रसकाय की हिंसा से तो बच सकता है, इसलिए रक्षा करुँ बोलना है ।

साधु-साध्वी भगवंत त्रस-स्थावर दोनों प्रकार के जीवों की अहिंसा करते हैं इससे उन्हें दोनों पैरों पर 'रक्षा करुँ' बोलना होता है ।

प्रश्न : पृथ्वीकाय से शुरु होने वाले बोल बोलते समय मुहपत्ति से प्रमार्जना के बदले चरवले से प्रमार्जना क्यों ?

उत्तर : मुहपत्ति पूजनीय वस्तु है, इसके अलावा मुहपत्ति नाभि से नीचे के अंगों से छूना नहीं चाहिए, ऐसी शास्त्रीय मर्यादा है । पैर, नाभि से नीचे का अंग है, वहाँ छुआने से दोष लगता है, इसलिए चरवले से पूंजना है ।

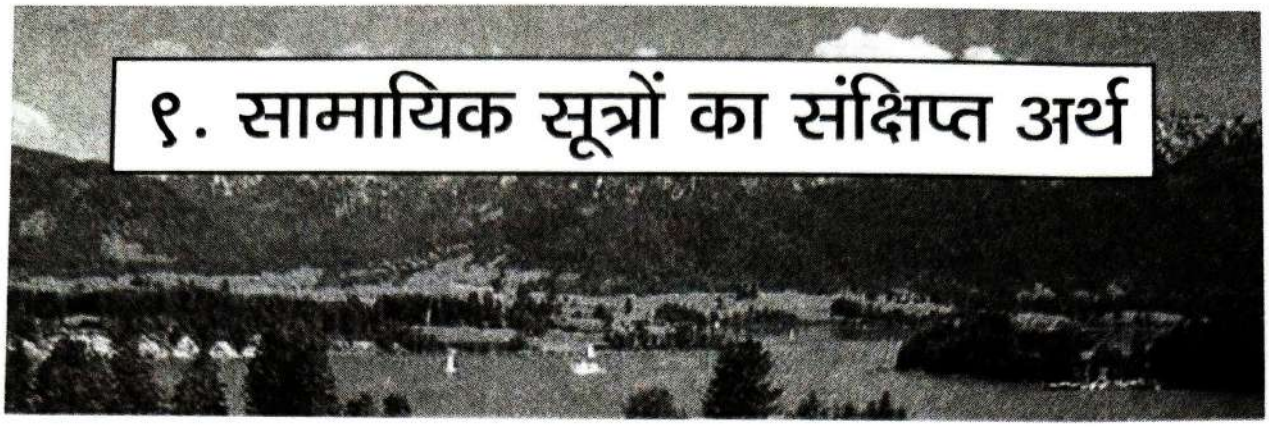


कई वृद्ध महात्मा जब मुहपत्ति का उपयोग नहीं होता है तब उसे कमर में नहीं लगाकर कंधे पर रखते हैं । या ओढ़े हुए कपड़े में मुहपत्ति लगा देते हैं । यह मर्यादा उपर्युक्त आशय की पूरक होने से बिल्कुल योग्य है । जैन धर्म प्रसारक सभा द्वारा प्रकाशित 'प्रतिक्रमण हेतु' पुस्तक में भी इसी बात का समर्थन किया गया है ।

इस प्रकार मुहपत्ति के पचास-पचास बोल के रहस्य समझे । वास्तव में तो अनंत कृपावंत परमगुरुदेव (पू. पंन्यासजी श्री अभयसागरजी म.सा. ने अनेक ग्रंथों, पड़िलेहण के लिए रचे गए कुलकों, गीतार्थ, वयोवृद्ध, पूज्यों और गीतार्थ श्रावकों के संपर्क से प्राप्त जानकारी का सार हमारे सामने रखा है, बहुत पूज्य और विद्वान सम्मत हैं ।

श्रीमुख वीर इम उच्चरे, श्रेणिकराय प्रते गुण लाल रे,
लाख खांड़ी सोना तणी, दीये जन प्रत्ये दान लाल रे,
लाख वरस लगी ते वली, इम दीये द्रव्य अपार लाल रे,
एक सामायिक ने तोले, नावे तेह लगार लाल रे

–धर्मसिंह मुनि



९. सामायिक सूत्रों का संक्षिप्त अर्थ

(१) श्री पंचमंगल महाश्रुतस्कंध (श्री नवकार सूत्र)

णमो अरिहंताणं :

चार घाती कर्मों का जिन्होंने नाश किया है, ऐसे श्री अरिहंत भगवंतों को नमस्कार हो ।

णमो सिद्धाणं :

जिन्होंने आठ कर्म क्षय किए हैं, जो मोक्ष में गए हैं और परमशुद्ध बने हैं ऐसे श्री सिद्ध भगवंतों को नमस्कार हो ।

णमो आयरियाणं :

आचार्य भगवंतों को नमस्कार हो ।

णमो उवज्झायाणं :

उपाध्याय भगवंतों को नमस्कार हो ।

णमो लोए सव्वसाहूणं :

अढ़ीद्वीप रुप मनुष्यलोक में विचरते सर्व साधु भगवंतों को नमस्कार हो।

यहाँ णमो शब्द का नमस्कार करता हूँ- नमन करता हूँ यह अर्थ न लेते हुए 'नमस्कार हो' यही अर्थ इष्ट है । पूज्य हरिभद्रसूरि महाराज आदि महर्षियों को भी यही अर्थ इष्ट है ।

नोट : देवसूर तपागच्छ समाचारी संरक्षक आगमोद्धारक पू. सागरजी म.सा. ने नवपदजी के व्याख्यान में पंचपरमेष्ठि संबंधी सचोट वर्णन किया है । विशेष वर्णन वहां पढ़ें ।

एसो पंच णमुक्कारो– इन पाँचों परमेष्ठियों को किया गया नमस्कार

सव्वपावप्पणासणो– (सर्व) अनेक भवों में उपार्जित किए पापों का

नाश करता है ।

मंगलाणं च सव्वेसिं–और लौकिक तथा लोकोत्तरं मंगलों में

पढ़मं हवइ मंगलं–पहला (सर्वश्रेष्ठ/उत्कृष्ट) मंगल है ।

(२) श्री पंचिंदिय (स्थापना) सूत्र

पंचिंदिय संवरणो– (५) पाँच इन्द्रियों के विकारों को रोकनेवाले

तह नवविह बंभचेर गुत्तिधरो– (९) और नौ प्रकार की (शीयलव्रत की वाड़) ब्रह्मचर्य की गुप्ति को धारण करनेवाले ।

चउविह कसाय मुक्को– (४) क्रोध, मान, माया, लोभ इन चारों कषायों से **मुक्त इअ अट्ठारसगुणेहिं** संजुत्तो-इन अठारह गुणों से संयुक्त (१)

पंचमहव्वयजुत्तो (५) पाँच महाव्रतों से युक्त (१. हिंसा नहीं करनी (२.झूठ नहीं बोलना. (३. चोरी नहीं करना (४. ब्रह्मचर्य पालन करना (५ किसी भी वस्तु पर ममत्त्व नहीं रखना।

पंचविहायार पालण समत्थो ५) ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार, इन पाँचों आचारों के पालन में समर्थ यानि शक्तिशाली.

पंचसमिओ तिगुत्तो (५ + ३) पाँच समिति से युक्त और तीन गुप्ति से मन, वचन, काया का गोपन करनेवाले ।

छत्रीस गुणो गुरु मज्झ : इन छत्तीस गुणों वाले मेरे गुरु महाराज हैं (मैं उनकी स्थापना करता हूँ ।)

(३) श्री पंचांग-प्रणिपात सूत्र

[गुरु वंदन सूत्र (लघु)]

इच्छामि खमासमणो वंदिउं-हे क्षमाश्रमण तपस्वी मुनिराज !

(आपके उत्तम गुणों से आकर्षित होकर) मैं वंदन करने की इच्छा करता हूँ ।

जावणिज्जाए निसीहियाए-शक्ति अनुसार, पाप व्यापारों का त्याग कर

मत्थएण वंदामि-मस्तक झुकाकर वंदन करता हूँ ।

(४) श्री इरियावही (प्रायश्चित्त) सूत्र

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! हे पूज्य ! इच्छा से आप मुझे आज्ञा दीजिए कि जिससे (शिष्य गुरु महाराज को पूछते हैं)

इरियावहियं पड़िक्कमामि ? मार्ग में चलते जो पाप लगे उनसे मैं पीछे हटूँ ? (जवाब में गुरुमहाराज कहते हैं-''पड़िक्कमेह'')

इच्छं- (आप यह आज्ञा दें ऐसा मैं) इच्छता हूँ ।

इच्छामि पड़िक्कमिउं-मैं पापों से निवर्तने (वापिस लौटने) का इच्छुक हूँ ।

इरियावहियाए विराहणाए-जाने आने के मार्ग में जो विराधना हुई हो ।

गमणागमणे-जाते या आते,

पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे-किसी जीव को पैर के नीचे या दूसरे तरीके से दबाने से, धान्य के बीज दबाने से हरी वनस्पति दबाने से।

ओसा, उत्तिंग-पणग-दग-मट्टी-मक्कड़ा संताणा-संकमणे-ओस, चींटी के बिल को, पाँच वर्ण की शैवाल, फफूँद, कच्चे पानी को, मिट्टी को, मकड़ी के जाले को पैर ले नीचे दबाने से या दब जाने से

जे मे जीवा विराहिया-यदि किन्ही जीवों को दु:खी कर विराधना की हो ।

एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया-एकेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रियवाले पृथ्वी, अग्नि, वायु, वनस्पति, जल.

दो इन्द्रिय वाले-स्पर्श और रसनेन्द्रियवाले-शंख, कौड़ी, जांक, अलसिया, कीड़े आदि ।

तीन इन्द्रियवाले स्पर्शन, रसन और घ्राणेन्द्रियवाले–खटमल, चींटी, मकोड़े आदि ।

चार इन्द्रिय वाले स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु इन्द्रियवाले-बिच्छू, भँवरा, मख्खी, मच्छर, पतंगा आदि ।

पांच इन्द्रियवाले-स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्रेन्द्रिय वाले-नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवता इन सभी एकेंन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों को ।

अभिहया, वत्तिया, लेसिया- सामने आनेवाले को मारा हो, धूल से ढ़ँका हो भूमि पर घसीटा हो या मसला हो ।

संघइया संघट्टिया-एक दूसरे को मिलाए हों या जीवों को अंदर इकट्ठे किए हों, थोड़े स्पर्श से पीड़ा दी हो ।

परियाविया, किलामिया, उद्दविया-कष्ट या परिताप दिया हो, थकाकर मुर्दे जैसे कर दिये हों या उद्वेग दिया हो, उपद्रव किया या त्रास दिया हो ।

ठाणाओ ठाणं संकामिया-एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखे हों या खिसकाएं हों

जीवियाओ ववरोविया-जीवित से चुकाए हो यानि वे मरण पाए हों ।

तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं-इस दुष्कृत से लगे मेरे पाप मिथ्या हो और नाश पाओ ।

(५) श्री तस्स उत्तरी सूत्र

तस्स उत्तरी करणेणं-लगे हुए इन पापों की विशेष शुद्धि करने के लिए (इरियावही की, फिर भी इतने मात्र से शुद्ध नहीं हुई अतः आत्मा की विशेष शुद्धि के लिए)

पायच्छित्त करणेणं-प्रायश्चित्त करने के लिए

विसोही करणेणं-आत्मा की विशेष शुद्धि करने के लिए

विसल्ली करणेणं-माया शल्य, नियाणशल्य और मिथ्यात्व शल्य से रहित होने के लिए

पावाणं कम्माणं-पाप कर्मों को

निग्घायणट्ठाए-नाश करने के लिए

ठामि काउसग्गं-कायोत्सर्ग में रहता हूँ ।

(६) अन्नत्थ-सूत्र

(कायोत्सर्ग-आगार सूत्र)

अन्नत्थ उससिएणं, नीससिएणं-इन आगारों के अलावा दूसरे स्थान पर (दूसरी कोई भी प्रवृत्ति से कायोत्सर्ग का भंग होता है । १) ऊँचा श्वास खींचने से २) नीचा श्वास रखने से ।

खासिएणं छीएणं जंभाइएणं- ४) खाँसी आने से ५) छींक आने से ६) उबासी आने से ।

उड्डुएणं वायनिसग्गेणं. ७) ड़कार या हिचकी आने से ७) अपान-वायु आने से ।

भमलीए पित्तमुच्छाए ८) चक्कर आने से ९) पित्त के कारण मूर्च्छा या उल्टी आने से ।

सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं

१०) सूक्ष्म रीति से शरीर हिलने से, जैसे पलकें झपकना ११) सूक्ष्म रुप से थूक या कफ निगलने से १२) सूक्ष्म रुप से नजर घूमने से **एवमाइएहिं आगारेहिं**- इन ऊपर बताए गए बारह आगार आदि को छोड़कर (आदि शब्द से सर्प, अग्नि आदि के उपद्रव समझना) ।

अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउसग्गो-अखंड़ित और विराधनारहित यानि शुद्ध, परिपूर्ण और आराधनायुक्त मेरा कायोत्सर्ग हो

जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमुक्कारेणं न पारेमि-जब तक अरिहंत भगवंतों को नमस्कार करके नहीं पारुँ यानि कायोत्सर्ग पूर्ण होने पर 'णमो अरिहंताणं' बोलकर नहीं पारुँ ।

ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि-तब तक काया को एक ही स्थान पर स्थित रखकर मौन से (मुँह से एक अक्षर भी उच्चारण किए बिना) और शुभ ध्यान के व्यापार सहित (शून्य बैठकर नहीं) मेरी बहिरात्मा को (यानि काया की चंचल वृत्ति को) वोसिराता हूँ अर्थात् हर तरह की बाह्य प्रवृत्ति से आत्मा को रोकता हूँ या मन, वचन, काया की चंचलता छोड़कर स्थिर होता हूँ ।

(७) श्री लोगस्स सूत्र (नामस्तव)

लोगस्स उज्जोअगरे- लोक में उद्योत करनेवाले

धम्म तित्थयरे जिणे-धर्मरुप तीर्थ (साधु-साध्वी, श्रावक, श्राविका रुप चतुर्विध श्री संघ) का प्रवर्तन करनेवाले, स्थापना करनेवाले और राग-द्वेष इन दो महाशत्रुओं को जीतनेवाले ।

अरिहंते कित्तइस्सं-अरिहंत भगवंतों की स्तुति, कीर्तन करुँगा ।

चउवीसंपि केवली-चौवीसों भगवान केवलज्ञान से पूर्ण थे, उनकी स्तुति ।

उसभमजिअं च वंदे-श्री ऋषभदेव और अजितनाथ प्रभु को वंदन करता हूँ ।

संभवमभिणंदणं च सुमइं च-श्री संभवनाथ, श्री अभिनंदन स्वामीजी और श्री सुमतिनाथ भगवान को,

पउमप्पहं सुपासं-श्री पद्मप्रभु और सुपार्श्वनाथ स्वामी को,

जिणं च चंदप्पहं वंदे-और रागद्वेष को जीतनेवाले श्री चंद्रप्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ ।

सुविहिं च पुप्फदंतं-श्री सुविधिनाथ भगवान या जिनका दूसरा नाम श्री पुष्पदंत प्रभु हैं, उन्हें

सीअल सिज्जंस वासुपुज्जं च-श्री शीतलनाथ, श्री श्रेयांसनाथ और श्री वासुपूज्य स्वामी को,

विमलमणंतं च जिणं-श्री विमलनाथ, श्री अनंतनाथ भगवान और रागद्वेषादि आंतर शत्रुओं को जीतनेवाले,

धम्मंसंतिं च वंदामि-श्री धर्मनाथ और श्री शांतिनाथ भगवान को वंदन करता हूँ ।

कुंथु अरं च मल्लिं-श्री कुंथुनाथ, श्री अरनाथ और श्री मल्लिनाथ प्रभु को,

वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च-श्री मुनिसुव्रत स्वामीजी और रागद्वेष को जीतनेवाले श्री नेमिनाथ प्रभु को मैं वंदन करता हूँ ।

वंदामि रिट्ठनेमिं-श्री नेमिनाथ प्रभु (अरिष्ट नेमि) को मैं वंदन करता हूँ ।

पासं तह वद्धमाणं च-भगवान श्री पार्श्वनाथस्वामी को और श्री महावीर स्वामी को (वर्धमान स्वामी) को नमन करता हूँ ।

एवंमए अभिथुआ-इस प्रकार (उन भगवंतों को) मेरे द्वारा स्तुति कराए हुए,

विहुयरयमला पहीण जरमरणा-जिन्होंने कर्मरुपी रज और मल दूर किए हों और जिनके वृद्धावस्था और मृत्यु संबंधी दु:ख नष्ट हो गए हैं ऐसे

चउवीसं पि जिणवरा-चौबीसों जिनेश्वर भगवंत (अपि यानि महाविदेह और ऐरावत क्षेत्र के भी)

तित्थयरा मे पसीयंतु-वे तीर्थंकर प्रभु मुझ पर प्रसन्न हों

कित्तिय वंदिय महिया-जो (देव-देवेंद्र से भी) वचन से स्तुति कराए हैं, काया से वंदन कराए हैं और जो देव और मानव समाज से पूजाए हैं ।

जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा-जो इस लोक में उत्तम सिद्ध हुए हैं

आरुग्ग बोहिलाभं-वे मुझे आरोग्यपूर्वक (शुद्ध देव, गुरु धर्म की श्रद्धा रुप) समकित की प्राप्ति,

समाहिवर मुत्तमं दिंतु-उत्तम श्रेष्ठ ऐसी चित्त की स्थिरतावाली समता रुपी समाधि दें या आप के प्रभाव से मुझे मिले,

चंदेसु निम्मलयरा-चंद्रोंसे भी अधिक निर्मलता वाले,

आइच्चेसु अहियं पयासयरा-सूर्यों से भी ज्यादा प्रकाश (ज्ञान) देनेवाले,

सागरवर गंभीरा-स्वयंभूरमण महासमुद्र से भी अधिक गंभीर.

सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु-ऐसे हे सिद्ध भगवंतों ! मुझे मोक्ष दें या आपकी स्तुति से मेरी आराधना के फल से मुझे मोक्ष मिले ।

(८) श्री करेमि भंते (सामायिक) सूत्र

करेमि भंते ! सामाइयं- हे भगवन् । सामायिक करता हूँ

सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जाव नियमं पज्जुवासामि.

दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए कारणं न करेमि न कारवेमि

तस्स भंते ! पड़िक्कमामि निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

सावद्य (पाप) योग का (व्यापार का) त्याग करता हूँ । जब तक मेरा नियम पूरा नहीं होता तब तक दो और तीन प्रकार से यानि मन, वचन, काया से (पाप-प्रवृत्ति) नहीं करुँगा, नहीं कराऊँगा । हे भगवन् । आज तक हो चुकी प्रवृत्तियों से पीछे हटता हूँ, निंदा करता हूँ और गुरु साक्षी से गर्हा करता हूं और ऐसी निंदित आत्मा को वोसिराता हूँ, त्याग करता हूँ ।

(९) सामाइयवयजुत्तो सूत्र

सामाइयवयजुत्तो-सामायिक व्रत को धारण करनेवाले श्रावक

जाव मणे होइ नियमसंजुत्तो-जब तक मन नियम सहित हो (करेमि भंते सूत्र की प्रतिज्ञा में प्रतिबद्ध हो) तब तक

छिन्नइ असुहं कम्मं-अपने पूर्वकृत अशुभ कर्मों को छेदता है (यानि सामायिक कर्मनाश का महान् व्यापार है)

सामाइय जत्तिआ वारा-जितनी बार सामायिक करे उतनी बार

सामाइअम्मि उ कए-और, सामायिक करते हुए (यानि जब श्रावक सामायिक करे तब तक)

समणो इअ सावओ हवइ जम्हा-श्रावक साधु जैसा ही बनता है, (सामायिक में उत्तमता प्राप्त करता है)

एएण कारणेणं-इस कारण से,

बहुसो सामाइयं कुज्जा-श्रावकों को बहुत बार सामायिक करना चाहिए ।

सामायिक विधि से ली, विधि से पाली, विधि करते जो कोई अविधि हुई हो, वो सब मन, वचन, काया से तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं ।

१० मन के १० वचन के १० काया के इन ३२ दोषों में से जो कोई दोष लगा हो, वह सब मन, वचन, काया से तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं ।



जे केवि गया मोक्खं, जे वि य गच्छंति, जे गमिस्संति
ते सव्वे सामाइयप्पभावेण मुणेयव्वो ।।

आज तक जितनी आत्माएँ मोक्ष में गई है, वर्तमान में जो जा रही हैं और भविष्य में जो मोक्ष में जाएंगी वह सब सामायिक के प्रभाव से ही जानना चाहिए ।



१०. चलें, उलझन मिटाएँ

प्रश्न १ : सामायिक लेते समय 'करेमि भंते' सूत्र गुरु म. या वृद्वजन से ही क्यों उच्चरना ?

उत्तर : 'करेमि भंते' सूत्र गुरु म. या वृद्वजन से उच्चरने के दो महत्त्वपूर्ण कारण हैं–

१) इस महासूत्र का बहुमान करना है और

२) यह सूत्र सामायिक और प्रत्याख्यान दोनों की प्रतिज्ञा रुप है ।

बहुमान इसलिए करना है क्योंकि चौदह पूर्व या द्वादशांगी या समस्त जिनशासन का सार यह सूत्र है । सभी व्रत, पाँचों आचार, चारों अनुयोग आदि सभी इस सूत्र में समाए हैं, इसके अलावा परमतारक परमात्मा के उत्कृष्ट जीवन-चरित्र का समावेश भी इसी सूत्र में हो जाता है ।

जैसे परमात्मा के आगम का बहुमान करना है वैसे इस सूत्र का भी बहुमान करना चाहिए । 'करेमि भंते' में समत्व-प्राप्ति और आश्रवों का पच्चक्खाण है । जैसे हम नवकारसी आदि के पच्चक्खाण गुरु म. या वृद्वजन से लेते हैं वैसे सामायिक दंड़क का पाठ भी पच्चक्खाण स्वरुप होने से उनके पास उच्चरना चाहिए ।

प्रश्न : यहाँ वृद्धजन की व्याख्या क्या है ?

उत्तर : जिनशासन चारित्र प्रधान धर्म है, इससे गुरु म. की अनुपस्थिति में जो भव्यात्मा हमसे पहले सामायिक लेकर विरति धर्म में जुड़ चुके हों वह वृद्धजन कहे जाते हैं । यहाँ उम्र से कोई संबंध नहीं है । ६०-७० वर्ष के वयोवृद्ध सामायिक ले तब उनसे पहले यदि किसी १०-१५ वर्ष के छोटे बालक ने सामायिक ले रखी हो तो विरतिधर बालक को बड़ा मानकर उसके पास ही

सामायिक उच्चरना चाहिए ।

प्रश्न ३ : सामायिक पारते समय इरियावहिया करने की क्या जरुरत ? क्योंकि सामायिक लेते समय कर चुके हैं ?

उत्तर : पुनः इरियावहिया करने की आवश्यकता इसलिए है कि हो सकता है सामायिक में मन-वचन काया से किसी सावद्य योग का सेवन हो गया हो, तो उसकी शुद्धि हो जाए ताकि सामायिक सांगोपांग शुद्ध ही रहे ।

दूसरा कारण पहले 'सज्झाय करुँ' आदेश के माध्यम से मन स्वाध्याय में स्थिर किया, अब सामायिक पारने की क्रिया में मन को ले जाना है । जितकल्प की समाचारी के हिसाब से एक क्रिया में से दूसरी क्रिया में जाना हो तो इरियावहिया जरुरी है । योगिक दृष्टि से इरियावहिया के 'इरि' शब्द का अर्थ मात्र कायिक प्रवृत्ति नहीं मानसिक प्रवृत्ति भी है, इससे भी इरियावहिया जरुरी है ।

प्रश्न ४ : दिन के २४ घंटों में सामायिक कब करें ?

उत्तर : जैसे प्रतिक्रमण और पौषध के लिए निश्चित समय का विधान शास्त्रों में बताया गया है, ऐसा सामायिक के लिए कोई नियत समय नहीं है । २४ घंटे में जब भी समय मिले तब सामायिक करना चाहिए । आवश्यक चूर्णि में इसी बात की स्पष्टता की गई है ।

जत्थ वा वीसमइ, अच्छइ वा निव्वावारो, सव्वत्थ सामाइयं करेह ।

अर्थ : जब जब विश्राम मिले, बैठे हों, निवृत्ति में हो तब-तब सामायिक करना चाहिए ।

जब भी समय मिले प्रमाद छोड़कर सामायिक करना चाहिए ऐसा शास्त्रकारों का आदेश होने पर भी व्यर्थ बातचीत में या यूँ ही समय बिगाड़ा जाए तो सामायिक के प्रति अनादर भाव होने से 'अनवस्थान' नामक अतिचार लगता है । शास्त्रों में तो यहाँ तक कहा गया है कि सामायिकादि विरति में जितना समय जाता है, वही सफल है, बाकी का समय तो भवभ्रमण का कारण है ।

भगवती सूत्र में आनेवाले तुंगीया नगरी के श्रावकों के अधिकार में बताया गया है कि वे दुकान पर भी सामायिक के उपकरण रखते थे । जब ग्राहक आने की संभावना नहीं होती तब दुकान में भी आराधना के लिए रखे गए स्थान में

सामायिक लेकर विरति धर्म की आराधना करते । जब जब समय मिले तुरंत सामायिक लेकर विरति धर्म की आराधना करते । जब-जब समय मिले तुरंत सामायिक लेकर 'बहुसो सामाइयं कुज्जा' यानि बहुत बार सामायिक करना चाहिए । ज्ञानी भगवंतों की इस उक्ति को चरितार्थ करना चाहिए ।

प्रश्न : सामायिकादि अनुष्ठानों की सांगोपांग विधि की जानकारी नहीं हो और अविधिसे क्रिया होती हो तो साधक अविधि दोष से बचने के लिए क्रिया नहीं करे तो अच्छा ?

उत्तर : वर्तमानकालिक विचारधारा के अनुलक्षी यह प्रश्न अत्यन्त विचारणीय है । इस प्रकार के विचारों को फैलाने वाले शास्त्र-ज्ञान से बिल्कुल अनजान है । साथ-साथ वे क्रिया-योग से निरपेक्ष हों ऐसा भी लगता है ।

वास्तव में तो विधि के लक्ष्य से ही सभी क्रियाएँ करना चाहिए, अविधि नहीं हो इसके लिए सावधान रहें, किंतु अविधि से ड़रकर क्रिया नहीं करनेवाला अधिक दोषी है । नहीं करने वाला दोषी है और नहीं करनेवाले से अविधि-आशातना से गिरे हुए का आत्मविकास अधिक होता है । इन पाँच शास्त्रीय भूमिकाओं के विचार से यह बात अच्छी तरह समझ में आएगी ।

१) अविधि-आशातना दूर करने का प्रयत्न करने वाला ज्यादा आगे है । इससे भी

२) आशातना दूर करनेवाला अधिक विकासशील है ।

३) सावधान रहनेवाला अर्थात् अविधि आदि हो जाए तो प्रायश्चित्तादि विधानों से शुद्ध होने वाला उससे भी आगे है ।

४) अविधि आशातना होने ही नहीं देनेवाला उपर्युक्त तीनों से आगे है किंतु

५) क्रिया नहीं करनेवाला सबसे पीछे है ।

इससे ही बालजीव अविधि-आशातना दूर नहीं कर सके तो भी धार्मिक क्रिया कभी नहीं छोड़ना चाहिए । हाँ अविधि आदि दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

प्रायश्चित्त-विधान में तो स्पष्ट बताया है कि...इस तरह की प्ररुपणा ही

उत्सूत्र-भाषण है और अविधि से करने के बजाय नहीं करने में बड़ा प्रायश्चित्त आता है ।

अविहिकया वरमकयं, असूय वयणं वयंति समयन्न ।
पायच्छित्तं जम्हा, अकयं गुरुयं कए लहुयं ।।

'अविधि से करना, इससे तो नहीं करना अच्छा, यह उत्सूत्र वचन है, ऐसा शास्त्रज्ञ पुरुष कहते हैं क्योंकि नहीं करने से बड़ा प्रायश्चित्त और करने पर अविधि हो जाए तो अल्प प्रायश्चित्त आता है । और एक बात विशेष रुप से याद रखने जैसी है-

संसारचक्र में जीव जब धर्मक्रिया का प्रारंभ करता है तब अनादि अशुभ संस्कारों से वासित होने स प्रायः अशुद्ध और अविधिवाली ही क्रियाएँ करता हैं । ऐसी क्रियाएँ करते करते धीरे धीरे आत्मा के ऊपर लगे अशुभ संस्कार दूर होते जाते हैं और शुभ संस्कार जमते जाते हैं । जैसे-जैसे शुभ संस्कारों का प्रमाण बढ़ता जाता है, क्रियाएँ शुद्ध, शुद्धतर, शुद्धतम होती जाती है ।

अविधि से क्रिया करते समय भव्यात्माओं को क्रिया-विमुख किए बिना धीरे-धीरे आशातना दूर कराते हुए, क्रियाएँ तो चालू ही रखनी और रखवानी चाहिए ।

येन केन प्रकारेण (किसी भी तरहसे) क्रिया की समीपता जिन प्रवचन में भव्यात्मा की शुक्लपाक्षिकता बताई गई है ।

प्रश्न ६ : क्रिया-शुद्धि हो पर सामायिक के प्रत्येक अंगों के रहस्यों की समझ नहीं हो तो समझे बिना की क्रिया सार्थक हो सकती है ?

उत्तर : एकदम सीधा जवाब है इसका...बीमार व्यक्ति का मात्र एक ही लक्ष्य होता है, ''रोग मिटाना'' किंतु रोग मिटाने के लिए समझ कर दवा लेने का आग्रह रखें तो समझते समझते आयुष्य ही पूरा हो जाए और मरण के शरण हो जाए ।

हाँ, दवा देने वाला वैद्य, चिकित्सक विश्वासपात्र होना चाहिए । भवरोग-भंजक क्रिया रुपी औषध बतानेवाले पूर्वपुरुष निस्पृही, निस्वार्थी, निर्दंभी थे, इसमें कोई संशय नहीं है ।

उनकी दर्शाई क्रियाएँ और बनाए सूत्र मंत्र-स्वरुप है । इसमें क्या है ? इसकी जानकारी नहीं हो तो भी असर हुए बिना नहीं रहता है ।

सर्पदंश से जहर चढ़ा हो, गारुड़िक मंत्र बोलता हो, हमें कुछ समझ नहीं आता तो भी जहर तो उतरता ही है । व्यवहार में भी अन्य मंत्रों की आम्नाय, रहस्यों की जानकारी नहीं हो तो भी उनका असर तो होता ही है तो गणधर भगवंतों या चारित्र-संपन्न महापुरुषों के रचे सूत्रों, निर्देशित क्रियाओं का असर क्यों न हो ? समझने की कोशिश करते रहना और साथ में क्रिया भी चालू रखना चाहिए, बिल्कुल छोड़ नहीं देना चाहिए ।

प्रश्न ७ : जन्म-मरण के सूतक के समय सामायिक होती है ?

उत्तर : सूतक के समय में जिनपूजादि का निषेध है, परंतु सामायिक छह आवश्यकों में से पहला आवश्यक है इसके करने में कोई बाधा नहीं है, तो भी कुछ मर्यादाओं का ध्यान रखना चाहिए ।

१. सूत्र उच्चारण पूर्वक नहीं, मन में बोलना चाहिए ।

२. स्थापनाचार्यजी से छुएँ नहीं, दूसरों से रखवाने की व्यवस्था करें ।

३. नवकारवाली नहीं गिनना, अंगुलियों पर जाप हो सकता हैं ।

प्रश्न ८ : इसका कोई आधार है ?

उत्तर यह परंपरा चली आ रही है, यही सबसे बड़ा आधार है न ?

प्रश्न ९ : 'जिंदगी भर सामायिक प्रतिक्रमणादि क्रियाएँ करने पर भी जीवन में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता, तो क्रियाएँ नुकसानकारी है' यह बात सही है ?

उत्तर सर्वप्रथम तो जीवन में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता यह बात ही गलत है । सभी जीव समान नहीं होते, तारतम्य वाले होते हैं, उनको उसके अनुसार लाभ होता ही है ।

आध्यात्मिक विकास अत्यंत गहन विषय है, इसका कभी अनुभव नहीं भी होता किंतु आत्मा की स्थिति में तो फर्क पड़ता ही है । इस पारंपरिक उत्कृष्ट फल का स्थूल दृष्टि से विचार करें तो क्रिया करने के बावजूद वर्तमान में

अपरिवर्तित जीवन वाले भी क्रिया की परंपरा टिकाए रखकर भावी पीढ़ी को प्रयोगात्मक ज्ञान विरासत में देकर अपनी जैनशासन और समाज के प्रति की वफादारी निभाते ही हैं । शासन और समाज की सेवा का लाभ परंपरा टिकाकर उठाते ही हैं, यह तो जघन्य वर्तमान कालिक फल की बात हुई बाकी आत्मा पर शुभ संस्कारों की जमावट और अशुभ संस्कारों की हानि कम-ज्यादा अंशों में होती ही है ।

प्रश्न : १० मुहपत्ति के विवरण में जो नाम बताएँ हैं, उनके अलावा दूसरे नाम हैं ?

उत्तर : मुहपत्ति के लिए शास्त्रों में नीचे के शब्द भी उपयोग में आते हैं ।

प्राकृत शब्द	**संस्कृत शब्द**
मुहपत्ति	मुखपट्टिका
मुहपोतिया	मुखपोतिका, मुखवस्त्रिका, मुखाच्छादन
मुहणंतग	मुखानंतक
पोत्तिया	पोतिका
हत्थग	हस्तक

प्रश्न ११ : सामायिक में लघुशंका या दीर्घशंका का निवारण हो सकता है ?

उत्तर : सामायिक का काल मात्र दो घड़ी ४८ मिनिट का ही है । इससे सामायिक लेने के पहले ही शंका-निवारण कर लेना चाहिए । जिससे अल्पसमय में यह प्रश्न खड़ा ही न हो । सामायिक का काल मुख्य रुप से स्वाध्याय, आत्मचिंतन, कायोत्सर्ग, अभ्यास आदि रत्नत्रयी की आराधना में ही गुजारना है । अल्प समय की विरति धर्म की आराधना में कोई छूट नहीं दी गई है ।

प्रश्न १२ : सामायिक में छूट नहीं दी गई, यह तो माना पर ऐसा कोई प्रसंग आए तो सामायिक अधूरा छोड़ दें ?

उत्तर : यदि शारीरिक आवेग पर काबू पाया जा सकता हो तो रोकना उचित है । यदि रोकने की शक्यता नहीं हो तो दूसरे वस्त्रों और अचित्त जल का उपयोग कर निवारण किया जा सकता है और शेष समय पूरा किया जा सकता है

। तत्पश्चात गीतार्थ गुरु म. से प्रायश्चित ले लें, पर सामायिक अधूरा पालना या छोड़ देना उचित नहीं है । (यह भी अत्यंत अपवादिक समझें ।)

प्रश्न १३ : सामायिक में धार्मिक संस्था का हिसाब-किताब, पत्राचार या मंदिर संबंधी बही खातों में लेखन हो सकता है ?

उत्तर : सामायिक निवृत्ति प्रधान विरति धर्म है और उपर्युक्त काम प्रवृत्ति प्रधान धर्म है । ये क्रियाएँ शुभ हैं पर विरति से उतरती हुई हैं, इसलिए शुभ होने के बावजूद नहीं की जा सकती ।

प्रश्न १४ : सामायिक के ४८ मिनिट में क्या करना ? या तीन नवकार गिनकर नीचे बैठकर सामायिक में लीन होने का क्या मतलब ?

उत्तर : आत्मा के विकास के प्रमाण को ध्यान में रखकर सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र में आगे बढ़ना । सावध कार्यों से मन, वचन काया को खींच लेना, अपने पापों और अपराधों का पश्चात्ताप करना-मोक्षाभिलाषा जागृत करना ।

इसके लिए तीर्थंकर प्रभु और महापुरुषों के चरित्र पढ़ना, विचारना चिंतन मनन करना ।

प्राचीन महापुरुषों द्वारा रचित ग्रंथों का योग्य क्रम से वाचन-मनन करना । मूल सूत्र और अर्थ का अभ्यास करना, कंठस्थ करना या नवकारवाली, अनानुपूर्वी गिनना, सूत्रों का पुनरावर्तन करना, स्वाध्याय करना या दूसरों को सुनाना, कराना कुछ भी नहीं हो सके तो कम-से-कम ३२ दोष की निवृत्ति सामायिक करने की सीधी सरल और व्यावहारिक योजना है । ३२ दोष टलें यानि लगभग सामायिक हो जाए ।



सामायिक विशुद्धात्मा, सर्वथा घाति कर्मणः
क्षयात् केवल माप्नोति, लोकालोक प्रकाशकम् ।।

सामायिक से विशुद्ध बनी आत्मा घातिकर्मों का सर्वथा नाश करके लोक और अलोक को प्रकाश करनेवाले केवल ज्ञान प्राप्त करता है ।

लट्टू

यूं तो बच्चों के विश्व में एक खिलौना ही है,
परन्तु
आध्यात्मिक विश्व में तो यह
लक्ष्य-निर्देशक प्राणवान प्रतीक भी माना जा सकता है।
लट्टू बताता है... मेरे अस्तित्व की सफलता यही है कि
मैं खड़ा रहूँ। इधर-उधर लेटे रहना
यह तो प्रमादी जीवन का निशान हो सकता है।
खड़े रहने के लिए मेरे सामने दो शर्त है...
1. सतत् घूमते रहना ।
2. संतुलन बनाए रखना ।
यूं देखें, तो हमारी आत्मा भी तो लट्टू है ।
आध्यात्मिक विश्व तल पर खड़े रहना
यही उसकी सफलता है।
इसलिए आत्मा को भी दो शर्तों का
पालन करना जरुरी है।
1. सतत् जिज्ञासा के पालन में तत्पर रहना ।
2. हर स्थिति में तटस्थ रहना ।
यह तटस्थता ही समभाव की जनेता है।
समभाव बनाम समता
और समता को पाने का माध्यम ही है 'सामायिक'।
और इसी सामयिक करने की मार्गदर्शक पुस्तक है -
'कैसे करें सामायिक ?'

- हेमचंद्रसागर